कोष ( रिज़र्व फंड ) में जमा करने के उपरान्त सदस्यों में बाँटा जा सकता है। इसके लिये रजिस्ट्रार की अनुमति लेनी पड़ती है। यह प्रतिबन्ध इस कारण लगाया गया है कि कहीं सदस्यों का उद्देश्य केवल अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना ही न हो जावे। अपरिमित दायित्व वाली समितियों में लाभ प्रान्तीय सरकार की आज्ञा से ही बाँटा जा सकता है। प्रान्तीय सरकार साधारण अनुमति भी दे सकती है। प्रत्येक प्रान्त ने यह नियम बना दिया है कि प्रत्येक समिति जिसके व्यापार में लाभ होता है, लाभ का कुछ अंश रक्षित कोष में रखेगी। रक्षित कोष, समिति के भंग हो जाने पर भी, सदस्यों में बाँटा नहीं जा सकता।

रक्षित कोष या तो समिति के व्यापार में लगाया जाता है, या रजिस्ट्रार के पास रहता है अथवा रजिस्ट्रार की आज्ञा से और कहीं जमा कर दिया जाता है। समिति के भङ्ग हो जाने पर, उसके ऋण को चुका कर जो रुपया बचे, उसका उपयोग समिति के निर्णय के अनुसार होगा। यदि समिति इसका निर्णय न कर सके तो रजिस्ट्रार जिस प्रकार उस धन का उपयोग करना चाहे कर सकता है। कुछ प्रान्तों में यह नियम है कि यदि समिति किसी अन्य सहकारी संस्था की सदस्य होती रक्षित कोष का बचा हुआ रुपया उसको दे दिया जावे।

प्रत्येक समिति, चौथाई लाभ रक्षित कोष में रखने के उपरान्त लाभ का १० प्रति शत दान तथा आगे लिखे सार्वजनिक कार्यों में व्यय कर सकती है —निर्धनों की सहायता, सार्वजनिक शिक्षा ( गाँवों तथा उन स्थानों में जहाँ समितियाँ हैं ), औषधि मुफ्त बँटवाने का प्रबन्ध, आदि। कोरी धार्मिक पूजा अथवा धार्मिक शिक्षा में वह रुपया व्यय नहीं किया जा सकता। ( धारा ३४ )।

यदि जिलाधीश जाँच के लिये प्रार्थना करे, पंचायत प्रार्थनापत्र भेजकर जाँच करवाना चाहे, अथवा समिति के एक तिहाई सदस्य

जाँच करवाना चाहे तो रजिस्ट्रार को स्वय या अपने किसी अधीन कर्मचारी से जांच करवानी होगी। वैसे रजिस्ट्रार को अधिकार है कि वह जब चाहे समिति की जाच कर सकता है। ( धारा ३५ )।

समिति के किसी भी लेनदार को यह अधिकार है कि वह समिति के हिसाब की, रजिस्ट्रार अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी कर्मचारी से, जाच करवावे। किन्तु लेनदार को जाच करने का व्यय देना होगा और उतना रुपया उसको पहिले जमा करना पड़ेगा। ( धारा ३६ )

निम्नलिखित दशाओं में समिति भग हो जाती है —(१) यदि किसी लेनदार की प्रार्थना पर रजिस्ट्रार ने जाच करवाई हो और उससे यह प्रतीत हो कि समिति को भग कर देना चाहिए, तो वह भग कर कर सकता है। (२) यदि समिति के तीन चौथाई सदस्य समिति को भग कर देने की प्रार्थना करें तो रजिस्ट्रार समिति को भग कर सकता है। भग करने की आज्ञा के विरुद्ध कोई भी सदस्य प्रान्तीय सरकार से प्रार्थना कर सकता है। किन्तु भग होने के दो मास के उपरान्त अपील नहीं सुनी जाती ( धारा ३६ )। ( ३ ) यदि समिति के सदस्यों की संख्या १० से कम हो जावे तो समिति स्वत ही भग हो जाती है। ( धारा ४० )

जब समिति भग हो जाती है, तब रजिस्ट्रार एक 'लिक्वीडेटर' नियुक्त करता है, जो उसका शेष काय करता है। लिक्वीडेटर का यह कर्त्तव्य होता है कि वह समिति की सम्पत्ति तथा देना का हिसाब बनावे, जिन लोगों पर समिति का रुपया बाकी है, उनसे वसूल करे, जिनकी समिति ऋणी है, उनका ऋण चुकावे, तथा सदस्यों के दायित्व का निश्चय करे, और उनसे रुपया वसूल करे। ( धारा ४१ और ४२)

प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार है कि वे सहकारी समितियों तथा उनके सदस्यों के झगड़ों को निपटाने के लिये कुछ नियम बना दें। सभी प्रा तो ने इसके वास्ते नियम बना लिये हैं। सहकारी समितियों

कोष ( रिज़र्व फंड ) में जमा करने के उपरान्त सदस्यों में बाँटा जा सकता है। इसके लिये रजिस्ट्रार की अनुमति लेनी पड़ती है। यह प्रतिबन्ध इस कारण लगाया गया है कि कहीं सदस्यों का उद्देश्य केवल अधिकाधिक लाभ प्राप्त करना ही न हो जावे। अपरिमित दायित्व वाली समितियों में लाभ प्रान्तीय सरकार की आज्ञा से ही बाटा जा सकता है। प्रान्तीय सरकार साधारण अनुमति भी दे सकती है। प्रत्येक प्रान्त ने यह नियम बना दिया है कि प्रत्येक समिति जिसके व्यापार में लाभ होता है, लाभ का कुछ अंश रक्षित कोष में रखेगी। रक्षित कोष, समिति के भंग हो जाने पर भी, सदस्यों में बाटा नहीं जा सकता।

रक्षित कोष या तो समिति के व्यापार में लगाया जाता है, या रजिस्ट्रार के पास रहता है अथवा रजिस्ट्रार की आज्ञा से और कहीं जमा कर दिया जाता है। समिति के भङ्ग हो जाने पर, उसके ऋण को चुका कर जो रुपया बचे उसका उपयोग समिति के निर्णय के अनुसार होगा। यदि समिति इसका निर्णय न कर सके तो रजिस्ट्रार जिस प्रकार उस धन का उपयोग करना चाहे कर सकता है। कुछ प्रान्तों में यह नियम है कि यदि समिति किसी अन्य सहकारी संस्था की सदस्य हो तो रक्षित कोष का बचा हुआ रुपया उसको दे दिया जावे।

प्रत्येक समिति, चौथाई लाभ रक्षित कोष में रखने के उपरान्त, लाभ का १० प्रति शत दान तथा आगे लिखे सार्वजनिक कार्यों में व्यय कर सकती है —निर्धनों की सहायता, सार्वजनिक शिक्षा ( गावों तथा उन स्थानों में जहाँ समितियाँ हैं ), औषधि मुफ्त बँटवाने का प्रबन्ध, आदि। कोरी धार्मिक पूजा अथवा धार्मिक शिक्षा में यह रुपया व्यय नहीं किया जा सकता। ( धारा ३४ )।

यदि जिलाधीश जाच के लिये प्रार्थना करे, पंचायत प्रार्थनापत्र भेजकर जाच करवाना चाहे, अथवा समिति के एक-तिहाई सदस्य

जांच करवाना चाहें तो रजिस्ट्रार को स्वयं या अपने किसी अधीन कर्मचारी से जांच करवानी होगी। वैसे रजिस्ट्रार को अधिकार है कि वह जब चाहे समिति की जांच कर सकता है। ( धारा ३५ )।

समिति के किसी भी लेनदार को यह अधिकार है कि वह समिति के हिसाब की, रजिस्ट्रार अथवा उसके द्वारा नियुक्त किसी कर्मचारी से, जांच करवावे। किन्तु लेनदार को जांच करने का व्यय देना होगा और उतना रुपया उसको पहिले जमा करना पड़ेगा। ( धारा ३६ )

निम्नलिखित दशाओं में समिति भंग हो जाती है —(१) यदि किसी लेनदार की प्रार्थना पर रजिस्ट्रार ने जांच करवाई हो और उससे यह प्रतीत हो कि समिति को भंग कर देना चाहिए, तो वह भंग कर कर सकता है। (२) यदि समिति के तीन चौथाई सदस्य समिति को भंग कर देने की प्रार्थना करें तो रजिस्ट्रार समिति को भंग कर सकता है। भंग करने की आज्ञा के विरुद्ध कोई भी सदस्य प्रान्तीय सरकार से प्रार्थना कर सकता है। किन्तु भंग होने के दो मास के उपरान्त अपील नहीं सुनी जाती ( धारा ३६ )। ( ३ ) यदि समिति के सदस्यों की संख्या १० से कम हो जावे तो समिति स्वतः ही भंग हो जाती है। ( धारा ४० )

जब समिति भंग हो जाती है, तब रजिस्ट्रार एक 'लिक्वीडेटर' नियुक्त करता है, जो उसका शेष कार्य करता है। लिक्वीडेटर का यह कर्त्तव्य होता है कि वह समिति की सम्पत्ति तथा देना का हिसाब बनावे, जिन लोगों पर समिति का रुपया बाकी है, उनसे वसूल करे जिनकी समिति ऋणी है, उनका ऋण चुकावे, तथा सदस्यों के दायित्व का निश्चय करे, और उनसे रुपया वसूल करे। ( धारा ४१ और ४२)

प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार है कि वे सहकारी समितियों तथा उनके सदस्यों के झगड़ों को निपटाने के लिये कुछ नियम बना दें। सभी प्रान्तों ने इसके वास्ते नियम बना लिये हैं। सहकारी समितियों

के लिये यह नियम अत्यन्त आवश्यक है। इन समितियों का उद्देश्य निर्धन मनुष्यों की आर्थिक अवस्था का सुधार करना, उनमें स्वावलम्बन का भाव जागृत करना, तथा उन्हें मितव्ययिता का पाठ पढ़ाना है। यह उद्देश्य तब तक पूरा नहीं हो सकता, जब तक ये लोग मुकदमेबाजी में व्यय करते रहें।

निम्नलिखित झगड़ों का निपटारा रजिस्ट्रार स्वयं कर सकता है, या वह इनके लिए एक या तीन पंच नियुक्त कर सकता है —(१) जिनसे समिति के व्यापार का सम्बन्ध है। (२) जिनमें सदस्यों का आपस में किसी बात पर झगड़ा हो, भूतपूर्व सदस्यों में कोई झगड़ा हो, अथवा समिति के पंचों में कोई झगड़ा हो। अन्य झगड़ों के लिये साधारण अदालतों में जाना होगा।

प्रत्येक पेशी के लिए दोनों पक्ष को उचित नोटिस दिया जाता है। रजिस्ट्रार अथवा पंचों को शपथ दिलाने, वादी प्रतिवादी और गवाहों को उपस्थित होने के लिये आज्ञा देने, तथा कागजों को मंगवाने का अधिकार है। यदि एक पक्ष उपस्थित हो तो भी फैसला किया जा सकता है। गवाही के लिये गवाह के उपस्थित न होने पर उसके विरुद्ध कार्यवाही की जा सकती है। रजिस्ट्रार तथा पंच ऐवीडेंस एक्ट (गवाही कानून) के नियमों को मानने के लिये बाध्य नहीं हैं।

यद्यपि रजिस्ट्रार तथा पंचों पर कानूनी बंधन लागू नहीं हैं, उन्हें यह प्रयत्न करना चाहिये कि वे दोनों पक्ष की बात एक दूसरे के सामने भली भांति सुनें। यदि झगड़े के विषय में निजी तौर से ज्ञात हुआ हो तो उसका विचार न करें। रजिस्ट्रार को तथा पंचों को यह अधिकार है कि केवल कानून को ही नहीं वस्तुस्थिति को भी देखें। फैसला लिखित होना चाहिये, उसपर स्टाम्प नहीं होता। वकीलों का इन मुकदमों में आज्ञा मिलने पर ही, आना हो सकता है। बम्बई में वकील, इन मुकदमों में, किसी दशा में भी नहीं आ सकते।

यदि रजिस्ट्रार ने कोई पंच नियुक्त किया हो तो पंच के फैसले के विरुद्ध, रजिस्ट्रार से अपील की जा सकती है। रजिस्ट्रार के फैसले के विरुद्ध अपील नहीं होती, हाँ, बम्बई में अपील प्रान्तीय सरकार में हो सकती है। रजिस्ट्रार के फैसले ठीक उसी तरह लागू होते हैं, जिस तरह कि अदालत के। (धारा ४३) रजिस्ट्रार की आज्ञा के विरुद्ध दो अवस्थाओं में प्रान्तीय सरकार में अपील की जा सकती है (१) जब वह किसी समिति को रजिस्टर करने से इनकार करे, (२) जब वह किसी समिति को भंग कर दे। अपील आज्ञा से दो महीने तक हो सकता है।

**भारतवर्ष में सहकारिता आन्दोलन का प्रसार**— आगे दिए हुए अंकों से समस्त भारतवर्ष में की सब प्रकार की सहकारी समितियों की स्थिति का अनुमान किया जा सकता है। सन् १९१० से १९१५ तक पांच वर्ष के औसत अंक इस प्रकार थे—समितियाँ १२ हजार, उनके सदस्य साढ़े पाँच लाख, और उनकी कार्यशील पूँजी साढ़े पाँच करोड़ रुपये। संख्याएँ धीरे धीरे बढ़ती गयीं। सन् १९३० से १९३५ के औसत अंक क्रमशः १०६ हजार, ४३ लाख, और ९५ करोड़ थे। सन् १९३९-४० में समितियाँ १२७ हजार, उनके सदस्य ६१ लाख, और कार्यशील पूँजी १०७ करोड़ रुपये था।

**आन्दोलन का सिंहावलोकन**—सहकारिता आन्दोलन को यहाँ स्थापित हुए ४४ वर्ष हो गए। इसके जन्म अर्थात् १९०४ से १९१४ तक इसका 'प्रारम्भिक प्रयास और आयोजन काल' था। सन् १९१४ में आन्दोलन की जाँच के लिए मेकलेगन कमेटी बैठाई गयी। उसकी सिफारिशों का आन्दोलन पर बहुत प्रभाव पड़ा। १९१९ में सहकारिता हस्तान्तरित विषय हो गया और मंत्रियों ने उसको प्रोत्साहन दिया। अतः १९१५ से १९२९ तक का काल सहकारिता आन्दोलन को उन्नत और शीघ्र गति से फैलने का समय है। आन्दोलन प्रत्येक प्रान्त में तेजी से बढ़ा। इसको हम योजना रहित प्रसार का काल

कह सकते हैं। इसके उपरान्त अर्थात् १६२६—३० के बाद भारतवर्ष में घोर आर्थिक मंदी प्रगट हुई, खेती की पैदावार का मूल्य बेहद गिर गया। फल यह हुआ कि भूमि का मूल्य भी घट गया। इस आर्थिकमंदी के परिणाम स्वरूप समस्त देश में सहकारिता आन्दोलन को गहरा धक्का लगा। सभी प्रान्तों में आन्दोलन के पुनर्निर्माण और सुधार के प्रयत्न आरम्भ हुए। इस काल को हम 'अवनति और पुनर्निर्माण का काल' कह सकते हैं। १६३६ के उपरान्त कुछ सुधार हुआ। परन्तु कुछ प्रान्तों (बंगाल, बिहार, उड़ीसा और बरार) में आन्दोलन की स्थिति इतनी खराब हो गयी थी कि वह खेती की पैदावार के मूल्य में वृद्धि होने पर भी नहीं सुधरी। कार्यकर्त्ताओं ने प्रान्तीय सरकारों की सहायता से आन्दोलन को बचाने का प्रयत्न किया।

१६४० से सहकारिता आन्दोलन पर युद्ध का प्रभाव पड़ने लगा। युद्ध के लिये आवश्यक वस्तुएँ तैयार कराने तथा उन्हें सरकार के हाथ बेचने के उद्देश्य से सभी प्रान्तों में गृह उद्योग धन्धों का संगठित किया गया, दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं का मूल्य अत्यधिक बढ़ जाने और उनके मिलने में कठिनाई होने से देश में उपभोक्ता-स्टोरों की एक बाढ़ सी आ गई। अन्य सहकारी समितियों की ओर कार्यकर्त्ताओं का ध्यान ही नहीं रहा। अब युद्ध समाप्त हो गया है। सहकारिता आन्दोलन में फिर नवीन परिवर्तन होगा। सम्भव है, युद्ध जनित गृह उद्योग धन्धे और स्टोर लुप्त हो जायँ। फिर भी देश के आर्थिक निर्माण में सहकारिता आन्दोलन का विशेष भाग रहेगा, इसमें संदेह नहीं।

**मल्टी-यूनिट कोआपरेटिव सोसायटीज एक्ट १६४२**— २ मार्च १६४२ को भारत सरकार ने सहकारी समितियों के सम्बन्ध में एक एक्ट पास किया है, जिसका सम्बन्ध उन सहकारी समितियों से है, जिनका कार्यक्षेत्र जिस प्रान्त में वे रजिस्टर की गई हैं, उनसे बाहर भी

है, जैसे सहकारी बीमा समिति, रेल अथवा तार विभाग के कर्मचारियों के लिए स्थापित सहकारी समिति, कोई अन्य समिति जिसके सदस्य प्रान्तों में भी हों, अथवा जिसकी शाखा दूसरे प्रान्तों में हो।

सहकारी समितियाँ प्रान्तीय विषय है। परन्तु यदि कोई सहकारी समिति अपने प्रान्त की सीमा के बाहर भी काम करे तो वह 'कारपोरेशन' मानी जावेगी। कारपोरेशन केन्द्रीय विषय है। १९४२ के एक्ट की मुख्य धारा इस प्रकार है —यदि कोई सहकारी समिति जिसके सम्बन्ध में यह एक्ट लागू होता है, किसी प्रान्त में रजिस्टर हो चुकी है और उसका कार्यक्षेत्र किसी दूसरे प्रान्त में भी है तो वह उस प्रान्त में भी रजिस्टर समझी जावेगी और उसके सम्बन्ध में वे ही सारे नियम (रजिस्ट्रेशन, निरीक्षण और दिवालिया होने के) लागू होंगे, जो उस प्रान्त में प्रचलित हैं, जहां कि वह समिति रजिस्टर हुई है। जो समिति इस एक्ट के बनने के बाद रजिस्टर हो, उनके सम्बन्ध में भी जिस प्रान्त में रजिस्टर होगी उस प्रान्त के ही सारे नियम लागू होंगे। लेकिन वह जिन दूसरे प्रान्तों में कार्य करेगी, वहां भी रजिस्टर समझी जावेगी। इस एक्ट के अनुसार केन्द्रीय सरकार इस प्रकार की समितियों का एक केन्द्रीय रजिस्ट्रार नियुक्त कर सकती है। उसकी नियुक्ति होने पर इन समितियों का रजिस्ट्रेशन, नियन्त्रण इत्यादि सब उसके अधिकार में होगा, प्रान्तीय रजिस्ट्रारों को इन समितियों से कोई वास्ता न होगा।

—•—

## पाँचवाँ परिच्छेद
# कृषि सहकारी साख समितियाँ

—०—

पहले कहा जा चुका है कि भारतीय कृषक की निर्धनता, उसका अशिक्षित होना, तथा महाजन का भयकर ऋण उसको महाजन का क्रीत दास बना देता है। इसीलिए भारत सरकार न सहकारी साख समितियों की स्थापना करवाई। इन समितियों के सदस्य वे ही हो सकते हैं, जो खेतीबारी में लगे हो तथा एक हा गाव में रहते हों। प्रत्येक गाव क निवासी एक दूसरे का आर्थिक स्थिति से भली भाति परिचित होते हैं तथा एक दूसरे क चरित्र के विषय में भी जानकारी रखते हैं। रैफीसन सहकारी साख समितिया अपरिमित दायित्व वाली होती हैं, इसलिए यह निता त आवश्यक है कि सदस्य एक दूसरे क चरित्र तथा आर्थिक स्थिति स भली भाति परिचित हों। अपरिमित दायित्व के सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक सदस्य समिति क ऋण का सामूहिक रूप से चुकाने के लिये बाध्य है। सहकारी साख समिति का प्रत्येक सदस्य दूसरे सदस्य क कार्यों का उत्तरदायी बन जाता है। यही कारण है कि नवीन सदस्य तभी समिति में लिया जा सकता है, जब दूसरे सब सदस्य उसको सदस्य बनान क पक्ष में हों।

एक गाँव में एक ही समिति—प्राय एक गाँव में एक ही साख समिति स्थापित की जाती है। यदि गाव बहुत बड़ा हो, जिसक कारण एक समिति सब वर्गों के लिए उपयोगी न हो सके, तो भिन्न भिन्न जातियों, तथा भिन्न भिन्न धर्मावलम्बियों का पृथक् पृथक् समितियाँ स्थापित की जा सकती हैं। किन्तु सहकारिता आन्दोलन में काय करन

वाले सरकारी तथा ग़ैर सरकारी कार्यकर्त्ता इस प्रकार की समितियों को प्रोत्साहन नहीं देते। सेन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी की सम्मति में किसी जाति, पेशे, तथा धर्मावलम्बियों की अलग साख समितियाँ स्थापित करना उचित नहीं है। गाँव में जितने भी मनुष्य हों, उन सब की एक ही समिति होना आवश्यक है। ऐसी साख समिति गाँव के प्रत्येक मनुष्य को एक आर्थिक सूत्र में बाँध कर उनमें प्रेम भाव उत्पन्न करती है।

प्रबन्धकारिणी सभा के कार्य—समिति का प्रबंध करने का अधिकार साधारण सभा तथा प्रबंधकारिणी सभा अर्थात् पंचायत को होता है। साधारण सभा सब महत्वपूर्ण प्रश्नों पर अपना स्पष्ट मत देती है, और पंचायत साधारण सभा की आज्ञाओं का पालन करती है। असल में साधारण सभा केवल नीति निर्धारित करती है, और पंचायत सब कार्य करती है, वे कार्य निम्नलिखित हैं —

(१) वह सदस्यों को हिस्से देती है तथा उनको समिति का सदस्य बनाती है।

(२) वह गाँव से डिपाज़िट लेने का प्रयत्न करती है, तथा सेन्ट्रल बैंक से ऋण लेने का प्रबन्ध करती है। उसका सब से महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह सदस्यों में मितव्ययिता का प्रचार करे, और उन्हें तथा अन्य ग्रामनिवासियों को समिति में रुपया जमा करने के लिये प्रोत्साहित करे।

(३) जब आवश्यकता हो, वह साधारण सभा का आयोजन करती है।

(४) वह यह निश्चय करती है कि किन सदस्यों को कितने समय के लिए रुपया उधार दिया जावे। साथ ही वह उस अवधि के अन्त में ऋण के रुपये को वसूल करती है।

(५) वह समिति के आय-व्यय का हिसाब रखती है।

(६) यह समिति सम्बन्धी कार्यों की रजिस्ट्रार से लिखापढ़ी करती है।

• (७) यह उन सदस्यों के लिए, जो सम्मिलित रूप से आवश्यक वस्तुओं को खरीदना चाहते हैं तथा खेत की पैदावार को बेचना चाहते हैं, दलाल का काम करती है।

(८) वह सरपच तथा मन्त्री का निर्वाचन करती है। सरपच समिति के सारे काय की देखभाल रखता है तथा मन्त्री समिति का हिसाब रखता है।

(९) वह प्रवेश फीस, हिस्सों का मूल्य, डिपाज़ट, तथा ऋण के द्वारा कार्यशील पूँजी उगाहती है। समिति का रक्षित कोष भी समिति की कार्यशील पूँजी को बढ़ाता है। प्रवेश-फ़ीस नाममात्र की होती है और उस प्रारम्भिक व्यय के लिए ली जाती है, जो समिति की स्थापना के समय करना पड़ता है।

हिस्से वाली और ग़ैर हिस्से वाली समितियाँ—कुछ प्रान्तों में सदस्यों को हिस्स खरीदने पड़ते हैं और कुछ प्रान्तों में हिस्से नहीं होते। पजाब, सयुक्तप्रान्त तथा मदरास में समितियाँ हिस्से वाली होती हैं। अन्य प्रान्तों में हिस्सेवाली और गैर हिस्सेवाली, दोनों ही तरह की समितियाँ हैं। भारतवर्ष में सहकारी साख समितियाँ कैसी होनी चाहिएँ, यह विचारणीय विषय है। कुछ विद्वानों का मत है कि समितियाँ हिस्से वाली होनी चाहिये क्योंकि हिस्सों को बेचकर थोड़ी कार्यशील पूँजी इकट्ठी कर ली जाती है। समिति अपनी पूँजी सदस्यों को ऋण स्वरूप देकर उस पर लाभ उठाती है और अप्रत्यक्ष रूप से रक्षित कोष की वृद्धि होती है। सदस्य समिति के कार्यों में विशेष चाव से भाग लने लगते हैं, क्योंकि वे उसे अपनी वस्तु समझते हैं। यह सब ठीक है, किन्तु भारतवर्ष में गाँवों में रहने वाले इतने निर्धन हैं कि किसी प्रकार भी हिस्से का मूल्य नहीं चुका सकते। ऐसी अवस्था में

यदि हिस्से वाली समितियाँ स्थापित की जावें तो वे ईमानदार तथा परिश्रमी किसान जो निर्धन हैं, सदस्य नहीं बन सकते। लेखक के विचार में गैर हिस्सेवाली समितियाँ ही उपयुक्त हैं। सदस्यों को सहकारिता के सिद्धान्तों की भली भाँति शिक्षा दी जावे तो वे समिति के काम में अधिक भाग लेने लगेंगे और उनमें मितव्ययिता के भाव जागृत हो सकेंगे। किसी को सदस्य बनाते समय यह भी बतलाया जाना चाहिये कि साख समिति केवल ऋण देने के ही लिये नहीं है, सदस्यों को उसमें रुपया भी जमा करना चाहिये।

डिपाज़िट—साख समिति का कोई सदस्य एक निश्चित रकम से अधिक के हिस्से नहीं खरीद सकता। प्रत्येक सदस्य को केवल एक 'वोट' देने का अधिकार होता है। प्रवेश-शुल्क तथा हिस्सों के मूल्य से समिति के पास नाममात्र की पूँजी इकट्ठा होती है। इसलिए समितियाँ अधिकतर ऋण और डिपाज़िट के द्वारा अपना काम चलाया करती हैं। कोई समिति जितना अधिक डिपाज़िट आकर्षित करे, उतनी ही उसकी सफलता समझनी चाहिये क्योंकि डिपाज़िट तभी अधिक जमा होगी, जब जनता को समिति का भरोसा होगा, और उसकी आर्थिक स्थिति में विश्वास होगा। जब तक साख समितियाँ डिपाज़िट आकर्षित करके अपनी आवश्यकता के अनुसार पूँजी जमा नहीं कर सकतीं, उनको निर्बल ही समझना चाहिये। जमा करने से ग्रामीण जनता तथा सदस्यों में मितव्ययिता का भाव जाग्रत होता है।

भारतवर्ष में अभी तक बम्बई प्रान्त को छोड़ और किसी प्रान्त में समितियाँ डिपाज़िट आकर्षित नहीं कर पाई हैं। साख समितियाँ गैर सदस्यों से भी डिपाज़िट लेती हैं, किन्तु सेन्ट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी का यह मत है कि सहकारी साख समितियों को अधिक सूद देकर डिपाज़िट आकर्षित न करना चाहिये, क्योंकि यदि समितियाँ डिपाज़िट पर अधिक सूद देंगी तो गाँवों में सूद की दर नहीं

घट सकेगी, जिसकी अत्य त आवश्यकता है। जब तक से ट्रल बैंक सुसगठित न हों और जब तक वे समितियों की आवश्यकता से अधिक पूँजी का उचित उपयोग करने के योग्य न हो जावें तथा आवश्यकता पड़ने पर समितियों को शीघ्र ही पूँजी देने की योग्यता प्राप्त न करलें, तब तक गैर सदस्यों से डिपाजिट लेना जोखिम का काम है, क्योंकि तनिक भी स देह हो जाने पर ग़ैर सदस्य अपना रुपया लेने को दौड़ पड़ेंगे।

मत्री—समिति के पचों को कोई वेतन नहीं दिया जाता, केवल मन्त्री को थोड़ा सा वेतन दिया जाता है। यदि मत्री उसी गाव का रहनेवाला हो तो अच्छा है, क्योंकि वह सदस्यों से भली भाति परिचित होगा। पर तु पटवारी को किसी भी अवस्था में म त्री न बनाना चाहिए, क्योंकि उसका गाव में बहुत प्रभाव होता है, सम्भव है कि वह पचायत के अनुशासन में न रहे, और सदस्य उसे दबाते रहें। यदि गाव की समिति में कोई शिक्षित सदस्य हो तो उसे म त्री बनाया जाना चाहिए यदि कोई सदस्य शिक्षित न हो तो गाव के शिक्षक को मत्री बनाना चाहिए।

रक्षित कोष—सहकारी साख समितियों की स्थापना लाभ की दृष्टि से नहीं की जाती, इसलिए अपरिमित उत्तरदायित्व वाली समितियों में तो लाभ बाँटा ही नहीं जाता, और यदि बाटा भी जाता है तो प्रान्तीय सरकार की आज्ञा लेकर। परिमित दायित्व वाली समितियाँ लाभ बांट सकती हैं, पर तु उनको भी यथेष्ट धन रक्षित कोष में जमा करना पड़ता है।

सहकारी साख समितियों का प्रबध-व्यय बहुत कम होने के कारण, तथा लाभ न बाटने के कारण, रक्षित कोष यथेष्ट जमा हो जाता है। प्रत्येक साख समिति के लिए रक्षित कोष अत्यन्त आवश्यक है। जब तक समिति के पास यथेष्ट कोष न हो जावे, तब तक वह सबल नहीं बन

सकती । रक्षित कोष किसी भी अवस्था में बाँटा नहीं जा सकता, उसका उपयोग समिति के कार्य में हानि होने पर उसे पूरा करने में होता है, यदि किसी देनदार से रुपया वसूल न हो अथवा किसी वस्तु के बेचने में हानि हो तो रक्षित कोष से पूरा किया जाता है। यदि समिति भंग हो जावे तो रक्षित कोष या तो किसी अन्य सहकारी समिति को दिया जावेगा या रजिस्ट्रार की अनुमति से किसी सार्वजनिक कार्य में व्यय किया जावेगा। परिमित दायित्व वाली समितियाँ अपने रक्षित कोष को, अपने व्यापार में न लगाकर, बाहर किसी बैंक में रखती हैं, किन्तु ऐसा वे ही समितियाँ करती हैं जो गैर सदस्यों का रुपया भी जमा करती हैं। अपरिमित दायित्व वाली समितियाँ रक्षित कोष के धन को अपने निजी कार्य में लगाती हैं, बाहर जमा नहीं करतीं।

**परिमित और अपरिमित दायित्व**—पहले कहा जा चुका है कि कृषि सहकारी साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं और नगर सहकारी साख समितियाँ, तथा जिन समितियों के अधिकतर सदस्य किसान नहीं होते, वे परिमित या अपरिमित किसी भी प्रकार का दायित्व स्वीकार कर सकती हैं। किन्तु जिन सहकारी समितियों की सदस्य अन्य समितियाँ हों, उनका दायित्व परिमित ही होगा। ऐसी समितियाँ प्रान्तीय सरकार से आज्ञा लेकर ही अपरिमित दायित्व वाली बन सकती हैं। भारतवर्ष में सब सेन्ट्रल बैंक, बैंकिंग यूनियन, तथा अधिकतर नगर सहकारी तथा वैसी साख समितियाँ, जिनमें अधिकतर किसान सदस्य नहीं होते, परिमित दायित्व वाली होती हैं। किसानों की साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं।

यदि किसी समिति को हानि हो जावे तो सर्वप्रथम उस सदस्य से रुपया वसूल किया जावेगा, जिसने ऋण लिया है। यदि उससे वसूल न हुआ तो ज़मानत देनेवाले से वसूल किया जावेगा। यदि उससे वसूल न हुआ तो रक्षित कोष से हानि भर दी जावेगी। यदि उससे भी हानि

घट सकेगी, जिसकी अत्यन्त आवश्यकता है। जब तक सेंट्रल बैंक सुसगठित न हो और जब तक वे समितियों की आवश्यकता से अधिक पूँजी का उचित उपयोग करने के योग्य न हो जावें तथा आवश्यकता पड़ने पर समितियों को शीघ्र ही पूँजी देने की योग्यता प्राप्त न करलें, तब तक गैर सदस्यों से डिपाजिट लेना जोखिम का काम है, क्योंकि तनिक भी सन्देह हो जाने पर ग़ैर सदस्य अपना रुपया लेने को दौड़ पड़ेंगे।

**मत्री**—समिति के पचों को कोई वेतन नहीं दिया जाता, केवल मन्त्री को थोड़ा सा वेतन दिया जाता है। यदि मत्री उसी गाव का रहनेवाला हो तो अच्छा है, क्योंकि वह सदस्यों से भली भांत परिचित होगा। परन्तु पटवारी को किसी भी अवस्था में मन्त्री न बनाना चाहिए, क्योंकि उसका गाव में बहुत प्रभाव होता है, सम्भव है कि वह पचायत के अनुशासन में न रहे, और सदस्य उसे दबाते रहें। यदि गाव की समिति में कोई शिक्षित सदस्य हो तो उसे मन्त्री बनाया जाना चाहिए यदि कोई सदस्य शिक्षित न हो तो गाव के शिक्षक को मत्री बनाना चाहिए।

**रक्षित कोष**—सहकारी साख समितियों की स्थापना लाभ की दृष्टि से नहीं की जाती, इसलिए अपरिमित उत्तरदायित्व वाली समितियों में तो लाभ बाँटा ही नहीं जाता, और यदि बाटा भी जाता है तो प्रान्तीय सरकार की आज्ञा लेकर। परिमित दायित्व वाली समितियाँ लाभ बांट सकती हैं, परन्तु उनको भी यथेष्ट धन रक्षित कोष में जमा करना पड़ता है।

सहकारी साख समितियों का प्रबन्ध-व्यय बहुत कम होने के कारण, तथा लाभ न बाटने के कारण, रक्षित कोष यथेष्ट जमा हो जाता है। प्रत्येक साख समिति के लिए रक्षित कोष अत्यन्त आवश्यक है। जब तक समिति के पास यथेष्ट कोष न हो जावे, तब तक वह सबल नहीं बन

सकती। रक्षित कोष किसी भी अवस्था में बाँटा नहीं जा सकता, उसका उपयोग समिति के कार्य में हानि होने पर उसे पूरा करने में होता है, यदि किसी देनदार से रुपया वसूल न हो अथवा किसी वस्तु के बेचने में हानि हो तो रक्षित कोष से पूरा किया जाता है। यदि समिति भंग हो जावे तो रक्षित कोष या तो किसी अन्य सहकारी समिति को दिया जावेगा या रजिस्ट्रार की अनुमति से किसी सार्वजनिक कार्य में व्यय किया जावेगा। परिमित दायित्व वाली समितियाँ अपने रक्षित कोष को, अपने व्यापार में न लगाकर, बाहर किसी बैङ्क में रखती हैं, किन्तु ऐसा वे ही समितियाँ करती हैं जो ग़ैर-सदस्यों का रुपया भी जमा करती हैं। अपरिमित दायित्व वाली समितियाँ रक्षित कोष के धन को अपने निजी कार्य में लगाती हैं, बाहर जमा नहीं करतीं।

**परिमित और अपरिमित दायित्व**—पहले कहा जा चुका है कि कृषि सहकारी साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं और नगर सहकारी साख समितियाँ, तथा जिन समितियों के अधिकतर सदस्य किसान नहीं होते, वे परिमित या अपरिमित किसी भी प्रकार का दायित्व स्वीकार कर सकती हैं। किन्तु जिन सहकारी समितियों की सदस्य अन्य समितियाँ हों, उनका दायित्व परिमित ही होगा। ऐसी समितियाँ प्रान्तीय सरकार से आज्ञा लेकर ही अपरिमित दायित्व वाली बन सकती हैं। भारतवर्ष में सब सेन्ट्रल बैङ्क, बैङ्किंग यूनियन, तथा अधिकतर नगर सहकारी तथा वैसी साख समितियाँ, जिनमें अधिकतर किसान सदस्य नहीं होते, परिमित दायित्व वाली होती हैं। किसानों की साख समितियाँ अपरिमित दायित्व वाली होती हैं।

यदि किसी समिति को हानि हो जावे तो सर्वप्रथम उस सदस्य से रुपया वसूल किया जावेगा, जिसने ऋण लिया है। यदि उससे वसूल न हुआ तो ज़मानत देनेवाले से वसूल किया जावेगा। यदि उससे वसूल न हुआ तो रक्षित कोष से हानि भर दी जावेगी। यदि उससे भी हानि

पूरी न हुई तो समिति की पूँजी का उपयोग किया जावेगा। यदि समिति की पूँजी देकर भी हानि पूरी न हो सके तो समिति के सदस्यों को समिति के देनदारों का रुपया चुकाना होगा। प्रत्येक सदस्य को कितना रुपया देना होगा, इसका हिसाब लिक्वीडेटर लगाएगा। व्यावहारिक दृष्टि से अपरिमित दायित्व का यही अर्थ निकलता है, किन्तु सिद्धान्त से प्रत्येक सदस्य व्यक्तिगत रूप से सारे ऋण को चुकाने को बाध्य है, यह उसी दशा में हो सकता है कि जब और सदस्यों से रुपया वसूल न हो सके।

**समिति की साख**—साधारण सभा अपनी मीटिंग में समिति की साख निर्धारित करती है, पंचायत उससे अधिक ऋण नहीं ले सकती। समिति की साख को निर्धारित करने के लिये यह आवश्यक है कि समिति के सदस्यों की सम्पत्ति का हिसाब लगाया जावे। भारतवर्ष के भिन्न भिन्न प्रान्तों में समिति के सब सदस्यों की सम्पत्ति की एक चौथाई से आधी तक साख निर्धारित की जाती है। समिति एक हैसियत रजिस्टर रखती है, जिसमें प्रत्येक सदस्य की हैसियत का लेखा रहता है। हैसियत-रजिस्टर का प्रति वर्ष संशोधन होता है और प्रत्येक सदस्य की हैसियत का यथार्थ लेखा रखने का प्रयत्न किया जाता है।

**सदस्यों का ऋण**—यह भी निश्चित कर दिया जाता है कि प्रत्येक सदस्य अधिक से अधिक कितना उधार ले सकता है। किसी भी अवस्था में सदस्य की सम्पत्ति का ५० प्रतिशत से *अधिक उधार नहीं* दिया जा सकता। रुपया उधार देते समय, पंचायत कर्ज लेने का उद्देश्य तथा सदस्य की चुकाने की शक्ति का अनुमान लगाती है, तभी कर्ज़ देना निश्चय करती है। सहकारिता आन्दोलन का सिद्धान्त है कि ऋण अनुत्पादक या व्यय के कार्यों *के लिये न दिया जावे*। किंतु भारतवर्ष में सहकारी साख समितियाँ विवाह, श्राद्ध, तथा अन्य सामाजिक कार्यों के लिये भी उधार देती हैं। पंचायत का यह मुख्य कर्तव्य

है कि वह इस बात की जाँच करे कि सदस्य कहाँ किस कार्य के लिये ले रहा है। साथ ही उसे इस बात का भी पता लगाना चाहिए कि सदस्य ने धन उसी कार्य में व्यय किया है, अथवा किसी अन्य कार्य में। यदि सदस्य ने किसी अन्य काम में रुपया लगाया है तो पंचायत को रुपया वापिस ले लेना चाहिए।

सहकारी साख समिति के सदस्यों को एक-दूसरे पर दृष्टि रखनी चाहिये कि वे धन का दुरुपयोग तो नहीं करते समय पर कर्ज़ चुकाते हैं, अथवा किस्तों को टालने का प्रयत्न करते हैं। पंचायत ऋण देते समय ही सदस्यों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए किस्तें बाँध देती है, उसका यह मुख्य कर्तव्य है कि वह देखे कि सदस्य समय पर किस्तें चुकाता है। यदि किसी अनिवार्य कारण वश सदस्य किस्त न चुका सके (जैसे फसल नष्ट हो जाने पर) तो उस की मियाद बढ़ा देना चाहिए।

समितियाँ अधिकतर नीचे लिखे कार्यों के लिये ऋण देती हैं —
(१) खेतीबारी के लिये, मालगुज़ारी तथा लगान देने के लिये। (२) भूमि का सुधार करने के लिये। (३) पुराने ऋण को चुकाने के लिये। (४) गृहस्थी के कार्यों के लिये (५) व्यापार के लिये। (६) भूमि खरीदने के लिये। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि किन कार्यों के लिये कितना रुपया लिया जाता है। बहुधा सदस्य प्रार्थनापत्र में तो खेती-बारी के लिये रुपया लेने की बात लिखता है, परन्तु उस रुपये का व्यय करता है किसी सामाजिक कार्य पर। समितियों ने अभी तक इस ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है।

समय की दृष्टि से ऋण दो प्रकार के होते हैं, अर्थात् थोड़े समय के लिये तथा अधिक समय के लिये। जो ऋण थोड़े समय के लिये लिया जाता है, उसका उपयोग खेतीबारी के धंधे में (अर्थात् बीज, खाद, बैल आदि वस्तुओं के खरीदने में) तथा अन्य आवश्यक खर्चों

में होता है। अधिक समय के लिये लिया हुआ ऋण भूमि खरीदने, कीमती यन्त्र लेने तथा पुराना कर्ज चुकाने के काम आता है। प्रान्तीय बैंकिंग इनक्वायरी कमेटियों की सम्मति है कि कृषि सहकारी साख समितियाँ अपने सदस्यों को तीन वर्ष से अधिक के लिए ऋण नहीं दे सकतीं सहकारिता आन्दोलन में कार्य करनेवालों की भी यही धारणा है। लम्बे समय के लिये ऋण देने का कार्य सहकारी भूमि-बन्धक बैंक ही कर सकते हैं।

सहकारी कृषि साख समिति की सफलता के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि सदस्य सहकारिता के सिद्धान्तों को समझें। इसलिए समिति का संगठन करते समय, उन्हें सहकारिता के सिद्धान्तों की शिक्षा देनी चाहिये। ग्रामीण सदस्य यही समझते हैं कि सहकारी साख समितियाँ सरकार द्वारा खोले हुये बैंक हैं जो हम लोगों को ऋण देते हैं। वे कभी स्वप्न में भी यह नहीं सोचते कि समिति हमारी ही है और हम अपरिमित दायित्व के द्वारा उचित सूद पर पूँजी पा सकते हैं। जब तक सदस्यों में स्वावलंबन का भाव जाग्रत नहीं होता, तब तक सहकारिता आन्दोलन सफल नहीं हो सकता।

**आय-व्यय निरीक्षण**—समितियों का आय-व्यय निरीक्षण रजिस्ट्रार की अधीनता में होता है। रजिस्ट्रार सहकारी विभाग के आय व्यय निरीक्षकों से जाँच कराता है, यदि कार्य किसी गैर सरकारी संस्था को दे दिया गया हो तो रजिस्ट्रार को उस संस्था के आडिटरों को लायसेन्स देता है, तभी वह आय व्यय निरीक्षण कर सकते हैं।

आडिटर इस बात की भी जाँच करता है कि कितना रुपया सदस्यों पर उधार है, जिसके चुकाने की अवधि समाप्त हो गई। वह समिति की लेनी देनी का भी हिसाब देखता है। उसको यह भी देखना चाहिये कि समिति का कार्य सहकारिता के सिद्धान्तों के अनुसार हो रहा है, अथवा नहीं। उसे समिति की आर्थिक स्थिति की पूरी जाँच

करनी चाहिए। उसे देखना चाहिये कि ऋण उचित समय के लिये तथा उचित कार्यों के वास्ते दिये गये हैं, आवश्यक जमानत ली है, अथवा नहीं, और सदस्य ठीक समय पर ऋण चुकाते हैं या नहीं, कहीं ऐसा तो नहीं होता कि सदस्य ठीक समय पर ऋण न चुकाते हों, किन्तु हिसाब में उनका रुपया जमा कर लिया जाता हो, और उतना ही ऋण फिर दे दिया जाता हो। कहने का तात्पर्य यह है कि निरीक्षक को पूरी जाँच करनी चाहिये। भारतवर्ष में यह कार्य भली भाँति नहीं हो रहा है। सहकारिता आन्दोलन में काम करने वालों की तथा सेन्ट्रल बैङ्किग इनक्वायरी कमेटी की राय है कि आय व्यय निरीक्षण का काम अत्यन्त त्रुटि पूर्ण है।

प्रत्येक प्रान्त में आय-व्यय निरीक्षण का काम रजिस्ट्रार की देखरेख में तो होता है परन्तु इस काम को भिन्न भिन्न संस्थाएँ कर रही हैं। पंजाब में प्रान्तीय सहकारी इन्स्टिट्यूट के कर्मचारी, बिहार उड़ीसा में प्रान्तीय फडेरेशन के कर्मचारी, तथा कुछ प्रान्तों में रजिस्ट्रार के कर्मचारी यह काम करते हैं। कुछ स्थानों में समितियों ने इस काम के लिए आय व्यय निरीक्षक यूनियन स्थापित की हैं।

अप्रैल सन् १६३१ में 'आल इण्डिया कोआपरेटिव कानफ्रेंस' का अधिवेशन हैदराबाद में हुआ था। उस सम्मेलन में समस्त भारत में आय-व्यय निरीक्षण की एक ही पद्धति चलाने का निश्चय हुआ और उसके अनुसार एक योजना भी तैयार की गई थी। उस योजना के अनुसार समितियों का निरीक्षण काम सेन्ट्रल बैंक, तथा बैंकिंग यूनियन के हाथ में, और आय व्यय निरीक्षण प्रान्तीय संस्थाओं के हाथ में, रहना चाहिये। प्रान्तीय संस्था प्रत्येक जिले में जिला आडिट-यूनियन स्थापित करे। उस जिले की सहकारी समितियाँ तथा सेन्ट्रल बैंक उस आडिट यूनियन से सम्बन्धित हों, तथा सब ज़िला-यूनियन प्रान्तीय संस्था से सम्बन्धित हों। प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट तथा ज़िला आडिट-यूनियन

यन के कर्मचारियों की नियुक्ति तथा अनुशासन प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट करे। प्रारम्भिक सहकारी समितियों का आय-व्यय निरीक्षण जिला आडिट यूनियन के आडिटर करें, और सेन्ट्रल बैंक तथा प्रांतीय बैंकों का आय व्यय निरीक्षण प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट के आडिटर करें।

प्रांतीय इन्स्टिट्यूट तथा जिला आडिट-यूनियन के आडिटर वही लोग नियत किये जावें, जिन्होंने इस काम की शिक्षा पाई है और जिनको रजिस्ट्रार ने लायसेंस दे दिया है। यदि कोई आडिटर इस काम के योग्य न हो तो रजिस्ट्रार उसका लायसेंस ज़ब्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त, रजिस्ट्रार आडिट-यूनियन तथा प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट नगर बैंक तथा सेंट्रल बैंकों से आडिट फ़ीस वसूल करेगी, किन्तु कृषि सहकारी साख समितियों का आय-व्यय निरीक्षण निश्शुल्क होना चाहिए। इस कारण प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय इन्स्टिट्यूट को आर्थिक सहायता प्रदान करे। अभी तथा प्रारम्भिक समितियों से थोड़ी आडिट फीस ली जाती है।

समितियों की देख रेख तथा उनका नियन्त्रण रजिस्ट्रार तथा प्रान्तीय सहकारी संस्था दोनों ही करते हैं।

**संयुक्त प्रान्त की समितियाँ**—संयुक्त प्रान्त में १०,००० कृषि सहकारी साख समितियाँ हैं। कृषि साख समितियाँ अपने अपने सदस्यों से ८ से १२ प्रतिशत सूद लेती हैं। जिन समितियों के पास अपनी पूँजी अधिक है, वे सदस्यों को ६ से ८ प्रतिशत सूद पर ही ऋण देती हैं। किन्तु ऐसी समितियों की संख्या ३००० ही है। संयुक्तप्रान्त में सूद की दर ऊँची है, उसको कम करने का प्रयत्न किया जा रहा है। अब संयुक्तप्रान्त में कृषि साख सहकारी समितियों को बहु उद्देश्य समितियों का रूप दिया जा रहा है। ये बहु उद्देश्य समितियाँ अथवा ग्राम-बैंक जो अभी तक केवल साख देने का काम करते थे, अब सदस्यों की पैदावार की बिक्री, खेती का सुधार तथा सदस्यों के लिए आवश्यक

वस्तुएँ संपादन का भी काम करते हैं। अभी तक इस प्रान्त में ५,००० ऐसे ग्राम बैंक अथवा बहु उद्देश्य समितियाँ स्थापित हो चुका हैं।

**भारतवर्ष में समितियों की स्थिति**—भारत में कुल कृषि साख सहकारी समितियों की संख्या १,०२,००० से ऊपर है और सदस्यों की संख्या ३८ लाख के लगभग है। उनका पूँजी इस प्रकार है —

| | |
|---|---|
| हिस्सा पूँजी | ४,४५,२४,००० रु० |
| रक्षित कोष | ८,८२,३६,००० ,, |
| डिपाजिट | २ ८४,००,००० ,, |
| ऋण | १२,६५,६८,००० ,, |
| कुल कार्यशील पूँजी | २६ ०७,५८,००० ,, |

इससे यह स्पष्ट है कि इन समितियों की १६ करोड़ रुपये की अपनी पूँजी है, और १३ करोड़ रुपये की उधार ली हुई पूँजी है। उनकी अपनी पूँजी कुल कार्यशील पूँजी की ५५ प्रतिशत से अधिक है, और जैसे जैसे समय व्यतीत होता जाता है, समितियों की निजी पूँजी बढ़ती जाती है।

इन आँकड़ों से ऐसा प्रतीत होता है कि आन्दोलन की स्थिति सतोषजनक है। किन्तु असल में ऐसा नहीं है। समितियों का रक्षित कोष वास्तव में 'रक्षित' नहीं है। वह अलग न रखा जाकर बहुधा उन समितियों के कारोबार में ही लगा दिया जाता है।

भारतवर्ष में साख समितियों का एक मुख्य दोष यह भी है कि वे अधिकतर बाहरी पूँजी पर अवलम्बित रहती हैं। जैसा कि हम आगे देखेंगे, अधिकतर धनी शहरी लोगों का ही रुपया सेन्ट्रल बैंकों के द्वारा गाँवों की समितियों के पास पहुँचता है, और वही रुपया निर्धन ग्रामीणों को मिलता है।

साख समितियों की आडिट रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि लगभग ५० प्रतिशत से अधिक ऋण ऐसा है, जिसकी अदायगी की तिथि कभी की

निकल गई और सदस्यों ने उस ऋण को नहीं चुकाया। वास्तव में कहीं कहीं तो स्थिति ऐसी बिगड़ गई कि सेन्ट्रल बैंकों को कुर्क और नीलाम करने पड़े, जिन्होंने साख समितियों के सदस्यों की कुर्की की, फिर भी कर्ज़ का बहुत सा रुपया वसूल नहीं हो पाया। जब मूल ऋण की अदायगी की यह दशा है तब उस पर जो सूद इकट्ठा हो गया है, उसका तो कहना ही क्या। बरार आदि में जब सेन्ट्रल बैंकों ने कर्ज़ के एवज में सदस्यों की भूमि ले ली तो उसका प्रबन्ध करना कठिन हो गया और सरकारी मालगुज़ारी अपने पास से देनी पड़ी। इसका परिणाम यह हुआ कि मध्यप्रान्त, बरार, बिहार, उड़ीसा और बंगाल में आन्दोलन नितान्त शक्तिहीन और निष्प्राण हो गया। लोगों को भय होने लगा कि आन्दोलन मर जावेगा। सन् १९४० में नया कर्ज़ एक करोड़ रुपये से भी कम दिया गया। इसके बाद नये कर्ज़ और भी कम कर दिये गये। निदान, साख पहले से बहुत सीमित और मर्यादित कर दी गई।

भारतवर्ष में जब कृषि सहकारी समितियों का वार्षिक आय व्यय निरीक्षण होता है तब निरीक्षक उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार उनको ए, बी, सी, डी और ई वर्ग में रखते हैं। 'ए' वर्ग की समितियाँ बहुत अच्छी समझी जाती हैं, 'बी' वर्ग की अच्छी, 'सी' वर्ग की साधारण, 'डी' वर्ग की बुरी, और 'ई' वर्ग की समितियाँ अत्यन्त बुरी समझी जाती हैं। 'ई' वर्ग की समितियों को दिवालिया कर दिया जाता है। रिपोर्टों से ज्ञात होता है कि समितियों में से एक बहुत बड़ी संख्या 'डी' और 'ई' वर्ग में है। बम्बई, मध्यप्रान्त, उड़ीसा, और आसाम में 'डी' और 'ई' वर्ग की समितियों की संख्या ४० प्रतिशत से अधिक है, और, शेष प्रान्तों में २५ प्रतिशत से अधिक इन्हीं वर्गों में है। ६ प्रान्तों में १० प्रतिशत से भी कम समितियाँ 'ए' और 'बी' वर्गों में हैं। इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषि सहकारी

वस्तुएँ उत्पादन का भी काम करते हैं। अभी तक इस प्रान्त में ५००० ऐसे ग्राम-बैंक अथवा बहु उद्देश्य समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं।

भारतवर्ष में समितियों की स्थिति—भारत में कुल कृषि साख सहकारी समितियों की संख्या १,०२ ००० से ऊपर है और सदस्यों की संख्या ३८ लाख के लगभग है। उनकी पूँजी इस प्रकार है —

| | |
|---|---|
| हिस्सा पूँजी | ४,४५,२४,००० रु० |
| रक्षित कोष | ८,८२,२६,००० „ |
| डिपाज़िट | २ ८४,००,००० „ |
| ऋण | १२,६४,६८,००० „ |
| कुल कार्यशील पूँजी | २६,०७,५८,००० „ |

इससे यह स्पष्ट है कि इन समितियों की १६ करोड़ रुपये की अपनी पूँजी है, और १२ करोड़ रुपये का उधार ली हुई पूँजी है। उनकी अपनी पूँजी कुल कार्यशील पूँजी का ५५ प्रतिशत से अधिक है, और जैसे जैसे समय व्यतीत होता जाता है, समितियों की निजी पूँजी बढ़ती जाती है।

इन आँकड़ों से ऐसा प्रतीत होता है कि आन्दोलन की स्थिति सन्तोषजनक है। किन्तु असल में ऐसा नहीं है। समितियों का रक्षित कोष वास्तव में 'रक्षित' नहीं है। वह अलग न रक्खा जाकर बहुधा उन समितियों के कारोबार में ही लगा दिया जाता है।

भारतवर्ष में साख समितियों का एक मुख्य दोष यह भी है कि वे अधिकतर बाहरी पूँजी पर अवलम्बित रहती हैं। जैसा कि हम आगे देखेंगे, अधिकतर धनी शहरी लोगों का ही रुपया सेन्ट्रल बैंकों के द्वारा गाँवों की समितियों के पास पहुँचता है, और वही रुपया निर्धन ग्रामीणों को मिलता है।

साख समितियों की आडिट रिपोर्ट से ज्ञात होता है कि लगभग ५० प्रतिशत से अधिक ऋण ऐसा है, जिसकी अदायगी की तिथि कभी की

निकल गई और सदस्यों ने उस ऋण को नहीं चुकाया। वास्तव में कहीं कहीं तो स्थिति ऐसी बिगड़ गई कि सेन्ट्रल बैंकों को कुक अमीन रखने पड़े, जिन्होंने लाख समितियों के सदस्यों की कुर्की की, फिर भी कर्ज़ का बहुत सा रुपया वसूल नहीं हो पाया। जब मूल ऋण की अदायगी की यह दशा है तब उस पर जो सूद इकट्ठा हो गया है, उसका तो कहना ही क्या। बरार आदि में जब सेन्ट्रल बैंकों ने कर्ज के एवज में सदस्यों की भूमि ले ली तो उसका प्रबन्ध करना कठिन हो गया और सरकारी मालगुज़ारी अपने पास से देनी पड़ी। इस सब का परिणाम यह हुआ कि मध्यप्रान्त, बरार, बिहार, उड़ीसा और बंगाल में आन्दोलन नितान्त शक्तिहीन और निष्प्राण हो गया। लोगों को भय होने लगा कि आन्दोलन मर जावेगा। सन् १९४० में नया कर्ज सात करोड़ रुपये से भी कम दिया गया। इसके बाद नये कर्ज़ और भी कम कर दिये गये। निदान, साख पहले से बहुत सीमित और मर्यादित कर दी गई।

भारतवर्ष में जब कृषि सहकारी समितियों का वार्षिक आय व्यय निरीक्षण होता है तब निरीक्षक उनकी आर्थिक स्थिति के अनुसार उनको ए, बी, सी, डी और ई वर्ग में रखते हैं। 'ए' वर्ग की समितियाँ बहुत अच्छी समझी जाती हैं, 'बी' वर्ग की अच्छी, 'सी' वर्ग की साधारण, 'डी' वर्ग की बुरी, और 'ई' वर्ग की समितियाँ अत्यन्त बुरी समझी जाती हैं। 'ई' वर्ग की समितियों को दिवालिया कर दिया जाता है। रिपोर्टों से ज्ञात होता है कि समितियों में से एक बहुत बड़ी संख्या 'डी' और 'ई' वर्ग में है। बम्बई, मध्यप्रान्त, उड़ीसा, और आसाम में 'डी' और 'ई' वर्ग की समितियों की संख्या ४० प्रतिशत से अधिक है, और, शेष प्रान्तों में २५ प्रतिशत से अधिक इन्हीं वर्गों में है। ६ प्रांतों में १० प्रतिशत से भी कम समितियाँ 'ए' और 'बी' वर्गों में है। इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि कृषि सहकारी

समितियों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। पिछले वर्षों में लगभग ६ प्रतिशत समितियाँ प्रतिवर्ष दिवालिया होती रहीं। समितियों की संख्या घटी नहीं, इसका कारण यह था कि साथ-साथ नई समितियों का भी संगठन होता रहा। मि० डार्लिङ्ग के अनुसार सहकारिता आन्दोलन के प्रारम्भ से आज तक जितनी समितियाँ स्थापित हुईं, उनकी २४ प्रतिशत दीवालिया हो गईं।

सहकारी साख समितियों से जैसी आशा थी, वे सफल नहीं हुईं। यह तो इसी से विदित हो जाता है कि पुरानी और सफल साख समितियों के सदस्यों की संख्या बढ़ नहीं रही है। ग्रामीण समिति का सदस्य बनने के लिए कोई ग्राहक विशेष उत्साह नहीं दिखलाता। चवालीस वर्ष के उपरान्त भी आन्दोलन निर्जीव और निस्तेज क्यों है, इसके कारण अन्तिम परिच्छेद में लिखे जावेंगे।

कुछ बातों के सम्बन्ध में सहकारिता आन्दोलन के कार्यकर्ताओं में पिछले वर्षों में घोर मतभेद रहा है, जैसे कृषि सहकारी साख समिति का दायित्व अपरिमित न होकर परिमित होना चाहिए। केवल सहकारी साख समिति से ग्रामीणों की आर्थिक समस्यायें हल न होंगी, उन्हें सब कामों में सहकारी संगठन की आवश्यकता है, अतएव साख समिति के स्थान पर बहु उद्देश्य सहकारी समिति स्थापित की जानी चाहिए, जो ग्रामीणों की अधिकांश आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा कर सकें, इत्यादि। इन सब प्रश्नों पर हम सहकारिता आन्दोलन के पुनर्निर्माण वाले परिच्छेद में प्रकाश डालेंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि साख आन्दोलन ऐसी स्थिति में पहुँच गया है कि यदि उसमें आवश्यक सुधार नहीं हुआ तो उसका सारा ढाँचा गिर पड़ेगा और आन्दोलन नष्ट हो जायगा।

---

# छठा परिच्छेद

# नगर सहकारी साख समितियाँ

**शहरी जनता और सहकारिता आन्दोलन**—शहरों की जनता आर्थिक दृष्टि से तीन भागों में बाँटी जा सकती है। (१) उत्पादन कार्यों में लगे हुए मनुष्य, (२) व्यापारी अर्थात् दलाल, और (३) उपभोक्ता। वैसे तो प्रत्येक मनुष्य उपभोक्ता है किन्तु सहकारिता के द्वारा अपनी स्थिति सुधारने का प्रयत्न केवल श्रमजीवी तथा नियमित वेतन पानेवाले मध्यम श्रेणी के मनुष्य ही करते हैं। इस कारण हम इन्हें ही उपभोक्ता वर्ग में रखते हैं। उत्पादक वर्ग में अनन्त धन राशि के स्वामी मिल-मालिकों से लेकर छोटे से छोटे जुलाहे अथवा अन्य कारीगर—सभी आ जाते हैं। पूँजीपतियों को साख देने का काम सहकारी साख समितियाँ नहीं कर सकतीं। इसके लिए व्यापारिक बैङ्क मौजूद हैं। सहकारिता आन्दोलन तो केवल निर्बल तथा निर्धनों के लिए है। गृह उद्योग धन्धों में लगे हुए कारीगरों को सहकारी साख समितियाँ अवश्य सहायता पहुँचा सकती हैं। व्यापारी वर्ग में छोटे बड़े सभी व्यापारी आ जाते हैं। बड़े व्यापारियों के लिए व्यापारिक बैङ्क खुले हुए हैं तथा वे अधिक निर्बल नहीं हैं। अस्तु, सहकारिता आन्दोलन यदि थोड़ी बहुत सहायता कर सकता है तो केवल छोटे छोटे निर्धन व्यापारियों की।

साधारणतः उपभोक्ताओं को साख की आवश्यकता न होनी चाहिये, क्योंकि वह तो अन्तिम खरीददार होता है। वह किसी भी वस्तु को बेचने के लिए नहीं खरीदता, वह तो वस्तु का उपभोग करता है, इस कारण उसको नक़द दाम ही चुकाना चाहिए। यदि वह उधार

माँगता है तो इसका अर्थ है कि वह आय से अधिक व्यय कर रहा है। ऐसी अवस्था में वह कर्ज को नहीं चुका सकेगा। अस्तु, साधारणतः उपभोक्ताओं को उधार देना जोखिम का काम है। किन्तु विशेष अवस्था में उन्हें उधार की आवश्यकता पड़ जाती है। मान लीजिये किसी मनुष्य के पास यथेष्ट सम्पत्ति अथवा धन है, पर वह धन कहीं लगा हुआ है, उस समय नहीं मिल सकता, और ठीक ऐसे समय ही उस आदमी को किसी आवश्यक कार्य के लिये रुपये की आवश्यकता है। ऐसी दशा में उसे कर्ज के सिवा कोई चारा नहीं रहता। कुछ लोग ऐसे भी हो सकते हैं, जिनके पास न तो सम्पत्ति ही है, और न उन्होंने कुछ बचाया ही है, उन्हें कर्ज की आवश्यकता पड़ती है। नौकरी छूट जाने पर तथा घर में लम्बी बीमारी हो जाने के कारण उन्हें कर्ज लेना पड़ता है। इन लोगों के पास ज़मानत कुछ नहीं होता। व्यापारिक बैङ्क थोड़ा ऋण नहीं देते, फिर, बिना जमानत तो वे ऋण दे ही नहीं सकते। ऐसे लोगों के लिये नगर सहकारी बैङ्क आवश्यक हैं। ये बैङ्क मज़दूरों या थोड़ा वेतन पानेवालों को महाजन के पञ्जों से बचाते हैं। इसके अतिरिक्त, ये बैङ्क साधारण स्थिति के लोगों में मितव्ययिता का भाव जाग्रत करते हैं, और उनकी थोड़ी सी बचत को जमा करते हैं। आड़े समय पर यह बैंक निर्धन मज़दूरों को सहायता पहुँचा सकते हैं। मिश्रित पूँजी वाले बैङ्क इन लोगों की समस्या को हल नहीं कर सकते।

**नगर सहकारी साख समितियाँ**—नगर सहकारी साख समितियाँ तीन प्रकार की होती हैं।—(१) वेतन पानेवालों की समितियाँ (२) मिल मज़दूरों की समितियाँ और (३) जातीय समितियाँ। भिन्न भिन्न दफ्तरों तथा कारखानों में कार्य करनेवाले वेतनभोगी कर्मचारियों की समितियाँ पृथक् होती हैं। इस प्रकार की साख समितियाँ अपेक्षाकृत सफल हो जाती हैं। उसका कारण यह होता है कि सदस्य शिक्षित होते हैं, तथा उन्हें नियमों के पालन का भी अभ्यास होता है, उसके

कारण समिति का कार्य सुचारु रूप से चलता है। इसके अतिरिक्त, यदि साख समिति को उस दफ्तर के प्रधान अफसर की भी सहानुभूति मिल जावे तो फिर कहना ही क्या है! उससे दिये हुए ऋण को वसूल करने में बहुत सहायता मिलती है। सहकारी साख समिति को चाहिए कि प्रत्येक मास सदस्यों को वेतन मिलने पर कुछ न कुछ जमा करने के लिये उत्साहित करे, जिससे उनमें मितव्ययिता का भाव जागृत हो।

मिल मज़दूरों की सहकारी साख समितियाँ भी ऊपर लिखा जैसा ही होता है। अन्तर इतना ही है कि इनके सदस्य अशिक्षित होते हैं तथा वे ऋण भी थोड़ा लेते हैं। ऐसी साख समितियों के लिये मिल मालिकों का सहानुभूति लाभदायक सिद्ध होता है। कुछ विद्वानों का कथन है कि सदस्यों को दिया हुआ ऋण मिल मालिकों के द्वारा वसूल किया जावे, किन्तु लेखक का मत इसके विरुद्ध है। यदि मिल मालिक मज़दूर के वेतन में से काट कर ऋण चुकावेंगे तो मज़दूर साख समिति को मिल मालिक का बैङ्क समझेगा, और इस प्रकार वह कभी भी सहकारिता आन्दोलन को न समझ सकेगा। अस्तु, ऋण वसूल करने में मिल मालिकों की सहायता यथा सम्भव न ली जावे, हाँ, उनकी सहानुभूति बहुत उपयोगी है। मिल मजदूरों की सहकारी साख समितियों के निरीक्षण और देखभाल की अत्यन्त आवश्यकता है। उसके बिना उनका सफल होना कठिन है। इसलिये जो पूँजीपति अपने मजदूरों की आर्थिक स्थिति को सुधारना चाहें, वे एक सुपरवाइज़र नियुक्त कर दें, जो उन मिलों के मज़दूरों की साख समितियों की देखभाल करता रहे। बम्बई तथा अन्य औद्योगिक केन्द्रों के कुछ विवेकशील मिल मालिकों ने अपने मज़दूरों के हितार्थ साख समितियाँ स्थापित की हैं। किन्तु मिल मज़दूरों को साख से भी अधिक सहकारी स्टोर की आवश्यकता है, जिससे वे अपने दैनिक जीवन की वस्तुएँ उचित मूल्य पर खरीद सकें। इसके अतिरिक्त सहकारी गृह निर्माण तथा सहकारी श्रम-

मितियाँ भी, मजदूरों के लिये, उपयोगी होंगी।

भारतवर्ष में जातीय सहकारी साख समितियाँ भी स्थापित की गई। उनमें प्रारम्भ में बहुत जोश होता है, किन्तु पीछे वह ठंडा पड़ जाता है और कार्यकर्त्ता शिथिल हो जाते हैं। ऋण देते समय इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि ऋण कितना दिया जाय न उसके वसूल करने में ही कड़ाई की जा सकती है, क्योंकि जाति भाई का लिहाज रहता है। यद्यपि इन समितियों में ऊपर लिखे दोष होते हैं, फिर भी कुछ समितियाँ अपनी जातियों की अच्छी सेवा कर रही हैं।

**कारीगर और साख**—इनके अतिरिक्त नगरों में गृह उद्योग धंधों में लगे हुए कारीगरों को भी साख की आवश्यकता होती है। व्यापारियों को मिश्रित पूँजी वाले बैंक उधार नहीं देते। कारण यह है कि एक तो कारीगरों को थोड़ी पूँजी की आवश्यकता होती है, जिसे देना बैंकों के लिये लाभदायक नहीं होता, दूसरे, कारीगरों के पास कोई जमानत भी नहीं होती। जमानत के बिना बैंक किसी को भी ऋण नहीं देते। इस लिए बेचारे कारीगर उन थोक व्यापारियों के चंगुल में फँस जाते हैं जो उनके तैयार माल का व्यापार करते हैं। व्यापारी कारीगरों को या तो कच्चा माल उधार दे देते हैं, अथवा उन्हें कच्चा माल लेने के लिये रुपया उधार दे देते हैं, शर्त यह होती है कि उन्हें तैयार माल उसी व्यापारी के हाथ बेचना होगा। फल यह होता है कि निर्धन कारीगर व्यापारी का चिर दास बन जाता है, और व्यापारी के लिये माल तैयार करता रहता है। व्यापारी उसको कम से कम मजदूरी देता है, इस प्रकार व्यापारी उसका शोषण करता है। कारीगर को इस प्रकार के शोषण से बचाने के लिये नगर सहकारी साख समितियों की अत्यंत आवश्यकता है। इस प्रकार की साख समितियाँ प्रत्येक धंधे के लिये अलग अलग होंगी, जैसे जुलाहों के लिये बुनकर साख समिति। अभी तक इस देश में उत्पादक सहकारी साख

समितियाँ अधिक संख्या में नहीं खोली गई और न इस आन्दोलन को अधिक सफलता ही मिली है। इसका कारण यह है कि साख समिति केवल पूँजी का प्रबंध करती है। कारीगर को कच्चे माल के लिये उसी व्यापारी की शरण में जाना पड़ता है। कारीगर अपने धंधों में कुशल होता है, किंतु वह कच्चा माल खरीदने तथा तैयार माल बेचने की कला नहीं जानता। इस कारण समिति को यह सब कार्य अपने हाथ में लेना चाहिये।

पीपल्स बैङ्क—नगरों में व्यापारियों के लिये मिश्रित पूँजी वाले व्यापारी बैङ्क हैं, किन्तु वहाँ तथा कस्बों में छोटे छोटे खोमचे वाले, दुकानदार तथा छोटे व्यापारी भी होते हैं, जिन्हें साख की आवश्यकता होती है। इन दूकानदारों के लिये पीपल्स बैंक (सुजली प्रणाली पर) स्थापित किए जाने चाहिए। बैङ्क गृह उद्योग धंधों को प्रोत्साहित करने के लिये कारीगरों को ऋण देते हैं, तथा गाँव की पैदावार को मंडियों तक पहुँचाने वालों को साख देते हैं। भारतवर्ष में ये बैंक अभी तक बहुत कम खोले जा सके हैं। जो नगर सहकारी बैङ्क खोले गये हैं वे प्रायः या तो जातीय बैङ्क हैं अथवा किसी एक पेशे में लगे हुए लोगों के बैंक हैं। बम्बई तथा बंगाल में अवश्य कुछ ऐसे बैङ्क सफलता पूर्वक कार्य कर रहे हैं।

नगर सहकारी बैङ्क तथा व्यापारी बैंक में अधिक भेद नहीं है। नगर सहकारी बैङ्कों में भी सेविंग (बचत), चालू, तथा मुद्दती जमा होती है। वे केवल सदस्यों को ही ऋण देते हैं। वे बिल तथा हुंडी को भुनाने का काम भी करते हैं। बंगाल तथा बम्बई के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रान्त में नगर सहकारी बैङ्कों ने अभी तक हुंडी का काम प्रारम्भ नहीं किया है। नगर सहकारी बैंक शुल्ज़ डैलिट्ज़ प्रणाली पर चलाये गये हैं। इन बैंकों की कार्यशील पूँजी डिपाजिट तथा हिस्सा पूँजी होती है, तथा दायित्व परिमित होता है। नगर सहकारी बैङ्क का

संगठन कृषि साख समिति जैसा ही होता है, केवल यह भेद है कि नगर सहकारी बैंकों में २५ प्रतिशत लाभ रक्षित कोष में रख कर बाकी बाँट दिया जाता है।

नगर सहकारी बैंक की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारी बैंकिंग के कार्य में दक्ष हों, तथा बैंक के प्रबन्धकर्ता भी अनुभवी पुरुष हों। बम्बई के सहकारी नगर बैंकों की सफलता का कारण यह है कि वहाँ सर लल्लूभाई सॉवलदास, तथा स्वर्गीय सर विट्ठलदास थैकरसे जैसे सुयोग्य और अनुभवी व्यवसायियों ने इनको सफल बनाने में सहयोग दिया था। बम्बई तथा मि ब में कुछ जातीय बैंकों को भी अच्छी सफलता मिली है। इनमें 'शमरा विट्ठल सहकारी बैंक लिमिटेड' का नाम उल्लेखनीय है। इस बैंक को सारस्वत ब्राह्मणों ने १६० में स्थापित किया था। इस समय इस बैंक की कार्यशील पूँजी १८ लाख रुपये के लगभग है।

बम्बई में मिल मजदूरों की भी साख समितियाँ हैं। इन्हें नगर सहकारी बैंक भी कहते हैं। इनमें एक दोष शीघ्र प्रवेश कर जाता है। ये अपने मुख्य कर्तव्य अर्थात् सदस्यों में मितव्ययिता के भाव का प्रचार न करके केवल सदस्यों को ऋण देने का कार्य करने लगते हैं। अब इस दोष की ओर ध्यान आकर्षित हुआ है और यह प्रयत्न किया जा रहा है कि सदस्य बैंक में रुपया जमा करें।

नगर सहकारी बैंक में, ऋण लेनेवाले को व्यक्तियों की जमानत देनी होती है। इस बैंक की समिति का प्रबन्ध एक प्रबन्धकारिणी समिति करती है। यह बात ध्यान में रखने की है कि मिल मजदूरों के बैंकों में यदि मिल मालिक का कोई प्रतिनिधि होता है तो जो कुछ वह करता है, वही होता है। साधारण सदस्यों को यह विचार ही नहीं होता कि समिति उनकी है।

नगर साख सहकारी समितियाँ मदरास और बम्बई प्रान्त में विशेष

रूप से हैं। इन प्रान्तों में सभी बड़े कस्बों में नगर साख सहकारी बैंक स्थापित हो चुके हैं, वैसे बंगाल और पंजाब में भी उनकी संख्या बढ़ रही है। भिन्न भिन्न प्रान्तों में इन बैंकों की संख्या और पूँजी इस प्रकार है—

| प्रान्त | संख्या | कार्यशील पूँजी |
|---|---|---|
| आसाम | १६३ | २७ लाख रु० के लगभग |
| बंगाल | १०८ | ६ करोड़ रु० से अधिक |
| बिहार | १०६ | ६० लाख रु० |
| बम्बई | ६८५ | ६ करोड़ रु० से अधिक |
| मदरास | ११७० | १ करोड़ ७० लाख रु० |
| पंजाब | ७४० | १ करोड़ २२ लाख रु० |
| सिंध | १३१ | ६६ लाख रु० |
| संयुक्तप्रान्त | ५०० से कम | ७७ लाख रु० |

मध्यप्रान्त बरार—केवल अमरावती में एक पीपल्स बैंक है।

देशी राज्यों में, मैसूर में ३०० से अधिक, और बड़ौदा तथा कश्मीर में क्रमशः २६ और २७ नगर साख समितियाँ काम कर रही हैं। समस्त भारत में इनकी संख्या ७००० है।

नगर साख सहकारी समितियाँ रेल डाक आदि के सरकारी कर्मचारियों, तथा अन्य वेतन भोगी मध्यम श्रेणी के व्यक्तियों, मिल मज़दूरों, छोटे दूकानदारों तथा कारीगरों की होती हैं। कृषि साख समितियों की अपेक्षा ये समितियाँ अधिक सफल हुई हैं। ये अधिक मजबूत और आर्थिक दृष्टि से अधिक स्वावलम्बी हैं। इनके दिये हुए ऋण की क़िस्तें बहुत कम बक़ाया रहती हैं। एक विशेष बात इन समितियों के सम्बन्ध में यह है कि ये अपनी हिस्सा पूँजी और डिपाज़िटों से ही इतना रुपया पा जाती हैं कि इनका काम अच्छी तरह से चल जाता है, और इन्हें सेंट्रल बैंकों अथवा प्रान्तीय बैंकों से ऋण लेने की आवश्यकता

नहीं पड़ता। सद्येर में ये अधिक स्वावलम्बी हैं। भारत जैसे देश में, जहाँ बैङ्कङ्ग की सुविधा कम है, उनकी और अधिक आवश्यकता है।

—०—

## सातवाँ परिच्छेद
## सेन्ट्रल बैङ्क तथा बैङ्किङ्ग यूनियन

—•—

पिछले परिच्छेद में नगर सहकारी बैङ्कों के बारे में लिखा गया है। कुछ लोगों का यह विचार था कि ये बैङ्क ग्रामीण समितियों के लिये भी रुपया इकट्ठा कर सकेंगे। इस कारण १६०४ के एक्ट के अनुसार केवल दो प्रकार की साख समितियाँ स्थापित की गईं। किन्तु यह आशा कि ग्रामीण जनता इन समितियों में रुपया जमा करेगी, पूरी नहीं हुई, क्योंकि एक तो किसान भूखा है दूसरे उसे बैङ्क में रुपया रखने का अभ्यास नहीं है। प्रारम्भ में सहकारी समितियाँ संख्या में कम थीं, इस कारण उनके लिए कार्यशील पूँजी इकट्ठी करने में अधिक कठिनाई प्रतीत नहीं हुई। रजिस्ट्रार, समितियों में जमा होनेवाले रुपये के अतिरिक्त, प्रान्तीय सरकार तथा धनी व्यक्तियों से रुपया लेकर काम चलाते थे। पर इस प्रकार अधिक दिनों काम नहीं चल सकता था।

सेन्ट्रल बैंक—यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि ऐसे सहकारी बैङ्क खोले जावें, जो नगरों में प्रारम्भिक सहकारी समितियों के लिये धन इकट्ठा करें। १६१२ में दूसरा एक्ट पास हुआ और उसके अनुसार सेन्ट्रल बैंक खोलने की सुविधा हो गई। १६१० और १६१५ के बीच में सब प्रकार की सहकारी समितियों की संख्या बहुत बढ़ गई तथा सेन्ट्रल बैङ्कों की भी स्थापना की गई। सन् १६१२ में दूसरा सहकारिता एक्ट पास हो जाने के उपरान्त संयुक्तप्रान्त, बङ्गाल, तथा मध्यप्रान्त में बहुत से सेन्ट्रल बैङ्कों की स्थापना हुई। १६१५ से १६२० तक सेन्ट्रल

बैंकों का औसत ३०१ था और प्रारम्भिक सहकारी समितियों की सख्या २७,५३५, थी। १६२० से १६२५ तक सेन्ट्रल बैंकों की सख्या ५०० थी तथा समितियों की सख्या ५५,८६६ था। इस समय ये सख्याएँ क्रमशः ६०० और १,०४,००० है।

सेन्ट्रल बैङ्क तीन प्रकार के होते हैं। (१) ऐसे सेन्ट्रल बैंक, जिनके सदस्य केवल व्यक्ति ही होते हैं। (२) एसे सेन्ट्रल बैंक जिनके सदस्य केवल समितियाँ ही हो सकती हैं। (३) ऐसे सेन्ट्रल बैङ्क, जिनके सदस्य व्यक्ति तथा समितियाँ दोनों ही होते हैं। *पहले प्रकार के बैंक केवल हिस्सेदारों के बैंक होते हैं।* ये सहकारिता के सिद्धान्तों के विरुद्ध हैं। इस कारण अब ऐसे बैङ्क नहीं रहे। दूसरे प्रकार के बैंक, जिनके सदस्य केवल समितियां होती हैं आदर्श सहकारी सेन्ट्रल बैंक हैं। समितियाँ इन बैङ्कों की नीति निर्धारित करती हैं, बैंक का प्रबन्ध भी उन्हीं के हाथ में रहता है। ऐसे बैंक को बैंकिङ्ग यूनियन कहते हैं। इन बैंकिङ्ग यूनियनों का सम्बन्ध ग्रामीण समितियों से होता है, ग्रामीण समितियाँ ही इनका प्रबन्ध करती हैं। इन बैंकिङ्ग यूनियनों की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि समितियों के सदस्य योग्य तथा प्रभावशाली व्यक्ति हों। यही कारण है कि बैंकिंग यूनियन सख्या में अधिक नहीं हैं। तीसरे प्रकार के सेन्ट्रल बैंक ही अधिक देखने में आते हैं। उत्तर भारत में बैंकिङ्ग यूनियन सख्या में यथेष्ट हैं, और दक्षिण में बहुत कम।

सेन्ट्रल बैंक का क्षेत्र प्रत्येक प्रान्त में भिन्न भिन्न होता है। उस क्षेत्र की सहकारी समितियाँ उसी बैंक से ऋण लेती हैं। सेन्ट्रल बैंक का क्षेत्र दक्षिण तथा पश्चिम भारत में एक जिला, परन्तु उत्तर भारत में तहसील ही होती है। इसलिए उत्तर भारत के सेन्ट्रल बैंकों से सम्बन्धित समितियों की सख्या तथा पूँजी कम होती है।

साधारण सभा—सेन्ट्रल बैंक के हिस्सेदारों की सभा को

साधारण सभा करते हैं। सभा के सदस्यों को केवल एक 'वोट' देने का अधिकार होता है। मिश्रित पूँजी वाली कम्पनियों की भाँति, जिनने अधिक हिस्से खरीदे हैं, उनको एक से अधिक 'वोट' देने का अधिकार नहीं है। साधारण सभा डायरेक्टरों का निर्वाचन करती है।

सचालक (डायरेक्टर)-बोर्ड बैंक का प्रबन्ध करता है। साधारणत सेन्ट्रल बैंक के डायरेक्टर सख्या में अधिक होते हैं, क्योंकि बहुत से स्वार्थों का प्रतिनिधित्व होना आवश्यक होता है। भिन्न भिन्न प्रान्तों में डायरेक्टरों की सख्या १० से २४ तक है। इससे यह कठिनाई होती है कि पूरे बोर्ड की मीटिंग का आयोजन कठिन हो जाता है, इसलिए बोर्ड अपने सदस्यों में से कार्यकारिणी समितियों का निर्वाचन करता है, जो बैंक का कार्य चलाती है। बैंक का दैनिक कार्य अवैतनिक मन्त्री, चेयरमैन तथा कोई एक डायरेक्टर, मैनेजर की सलाह से, करता है। डायरेक्टरों को फीस अथवा वेतन कुछ नहीं मिलता। कहीं कहीं डायरेक्टर समितियों की आवश्यकता जानने के लिए उनका निरीक्षण करते हैं तथा यह रिपोर्ट करते हैं कि उनको कितना ऋण देना चाहिए। डायरेक्टर बदलते रहते हैं। चेयरमैन तथा मन्त्री व्यक्ति सदस्यों में से चुन जाते हैं। उत्तरीय तथा पूर्वी भारत में चेयरमैन कहीं कहीं सरकारी कर्मचारी भी होता है अधिकतर वह ग़ैर सरकारी ही होता है। प्राय डायरेक्टर समितियों के प्रतिनिधि ही होते हैं।

मैनेजर—प्रत्येक बैङ्क एक मैनेजर नियुक्त करता है। मैनेजर प्रत्येक प्रान्त में एक सा कार्य नहीं करता। कुछ प्रान्तों में वह बैङ्क को अच्छे रूप से चलाने के अतिरिक्त, सम्बन्धित साख समितियों के लिए भी ज़िम्मेदार होता है। इसलिए उसको सेन्ट्रल बैंक के होगा करनेवाले कर्मचारियों की भी देखभाल करनी पड़ती है। अन्य प्रान्तों में — केवल साख समितियों के लिए ज़िम्मेदार होता है, इसलिए।

इसलिए उनके प्रामिसरी नोट पर बैंक ऋण नहीं दे सकता। सेन्ट्रल बैंक अन्य मिश्रित पूँजी वाले बैंकों से ऋण नहीं लेते, ये अधिकतर प्रांतीय सहकारी बैंकों से ही लेते हैं। इन बैंकों के सम्बन्ध में अगले परिच्छेद में लिखा जायगा। जहाँ प्रान्तीय बैंक स्थापित हो चुके हैं, वहाँ सेन्ट्रल बैंक, अन्य मिश्रित पूँजीवाले व्यापारिक बैंकों तथा दूसरे सेन्ट्रल बैंकों से सीधा सम्बन्ध नहीं रख सकते। यह नियम मदरास और पंजाब में कड़ाई के साथ उपयोग में नहीं लाया जाता। संयुक्तप्रांत में एक सेन्ट्रल बैंक दूसरे सेन्ट्रल बैंकों को, रजिस्ट्रार की अनुमति लेकर, ऋण दे सकता है।

सेन्ट्रल बैंक अधिकतर सहकारी साख समितियों तथा गैर साख समितियों को ही ऋण देते हैं। पञ्जाब, मैसूर, ग्वालियर, तथा मदरास में अब भी सेन्ट्रल बैंक व्यक्तियों को ऋण देते हैं, किन्तु यह रिवाज अब बन्द की जा रही है। सहकारी समितियों के पास जमा करने के लिये अधिक पूँजी तो होता नहीं, इस कारण बैंक समितियों को ऋण देने का ही कार्य अधिक करते हैं। सेन्ट्रल बैंक व्यक्तियों, विशेष प्रकार की समितियों, तथा कृषि सहकारी समितियों को, नोट अथवा बाँड पर, ऋण दे देते हैं। किन्तु व्यक्तियों और विशेष प्रकार की समितियों से इसके अतिरिक्त कुछ जायदाद अथवा सम्पत्ति गिरवी रखवाई जाती है। कृषि सहकारी समितियों के अपरिमित दायित्व के कारण उनका 'प्रोनोट' ही यथेष्ट ज़मानत समझी जाती है। जब सहकारी साख समिति किसी सदस्य के पुराने ऋण को चुकाने के लिए लम्बा ऋण लेती है तो सेन्ट्रल बैंक 'प्रोनोट' के अतिरिक्त उन कागज़ों को, जो सदस्य ने समिति को लिख दिये हैं, अपने नाम करवा लेता है।

यह जानने के लिए कि प्रत्येक सहकारी साख समिति को अधिक से अधिक कितना ऋण देना उचित होगा, सेन्ट्रल बैंक अपने से सम्बन्धित साख समितियों की साख का अनुमान लगाते हैं। जो ऋण

समितियों को दिया जाता है वह निश्चित वर्षों में वसूल कर लिया जाता है। कुछ प्रान्तों में तो ऋण बहुत समय के लिए भी दिया जाता है, किन्तु कुछ में केवल कम समय के लिए ही। ऋण की स्वीकृति देने में बहुत सी कानूनी कार्यवाही करनी पड़ती है, इसलिए ऋण मिलने में देर हो जाती है। इस दोष को दूर करने के लिए कुछ सेन्ट्रल बैंक एक रकम निश्चित कर देते हैं, जिस तक समितियों को बिना किसी देरी के कर्ज दे दिया जाता है अधिक रकम के लिए नियमित कार्यवाही करनी पड़ती है। कुछ प्रान्तों में समितियों की सामान्य साख निर्धारित कर दी जाती है। ऐसा करने से पूर्व, उनके सदस्यों की सामान्य साख का लेखा तैयार किया जाता है, जिसमें सदस्यों की सम्पत्ति, उनकी आवश्यकता, उनकी आयु तथा उनकी बचाने की शक्ति का ब्योरा रहता है। इस लेखे के आधार पर बैंक यह निश्चित कर लेता है कि समिति को किस रकम तक कर्ज दिया जा सकता है। सदस्यों की सामान्य साख का लेखा प्रतिवर्ष रजिस्ट्रार के अनुसार तैयार किया जाता है।

सेन्ट्रल बैंक भिन्न भिन्न प्रान्तों में जुदा-जुदा समय के लिए कर्ज देते हैं। फसल उत्पन्न करने के लिए जो कर्ज लिया जाता है वह एक दो वर्ष के लिए होता है, और जो ऋण भूमि में सुधारने के लिए, अथवा पुराने कर्जों को अदा करने के लिए लिया जाता है, वह पाँच से दस वर्ष तक के लिये दिया जाता है। प्रत्येक प्रांत में यह धारणा और पकड़ रही है कि सेन्ट्रल बैंक अधिक समय के लिए ऋण नहीं दे सकते। इसके लिए भूमि बंधक बैंक स्थापित करना चाहिए।

सेन्ट्रल बैंक अभी तक समितियों से ८ से १२ प्रतिशत सूद लेते रहे हैं। जब बाजार में सूद की दर बहुत घट गई तब इन बैंकों ने दर घटाई, और अब प्रयत्न किया जा रहा है कि सूद की दर और घटाई जावे। भारतीय सहकारिता आन्दोलन की सबसे बड़ी कमी यह है कि

समितियाँ ऋण को उचित समय पर नहीं दे पातीं और बहुत सा रुपया बाकी रह जाता है। इसका मुख्य कारण यह है कि सदस्य अशिक्षित हैं, उन्हें ज्ञान नहीं है, कभी कभी फसल नष्ट हो जाने के कारण भी वे कर्ज़ अदा नहीं कर पाते। यदि फसल के नष्ट हो जाने से समितियाँ अपना ऋण नहीं दे पातीं तो उन्हें अधिक समय दे दिया जाता है। जब कोई समिति अपना ऋण नहीं देती तो बैंक, जहाँ तक हो सकता है, रुपया वसूल करता है। यदि रुपया किसी भी प्रकार वसूल नहीं होता तो बैंक रजिस्ट्रार से समिति तोड़ देने के लिए कहता है, अथवा अदालत से डिगरी कराता है।

जब समितियाँ सेन्ट्रल बैंक को ऋण का रुपया चुकाती हैं, उस समय बैङ्क के पास आवश्यकता से अधिक रुपया जमा हो जाता है। यह स्थिति वर्ष में दो से चार महीने तक रहती है। इस समय बैङ्क प्रान्तीय बैङ्कों में रुपया जमा कर देते हैं; जहाँ प्रान्तीय बैंक नहीं है, वहाँ रुपया इम्पीरियल बैंक में जमा कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक बैङ्क के पास कुछ रुपया स्थाई रूप में अधिक होता है, जो समितियों को ऋण देने में नहीं लगाया जा सकता। यह कोष प्रान्तीय बैंक में अधिक समय के लिए जमा कर दिया जाता है, अथवा ट्रस्ट-सिक्यूरिटी में लगा दिया जाता है। इस समय सेन्ट्रल बैंकों की नीति यह है कि वे आवश्यकता से अधिक डिपाज़िट नहीं लेना चाहते, इस लिए डिपाज़िट पर सूद की दर बहुत घटा दी गई है।

नक़दी—मैकलगन कमेटी ने प्रत्येक सेन्ट्रल बैङ्क द्वारा नक़दी रखे जाने की आवश्यकता बतलाई है। किसी समय ऐसा सम्भव है कि डिपाज़िट निकाल लो जावें और लोग रुपया न जमा करें। ऐसे समय पर जमा करनेवालों को उनका रुपया दे सकने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक सेन्ट्रल बैङ्क कुछ-न-कुछ नक़दी अवश्य रखे। मैकलेगन कमेटी ने इस विषय में निम्नलिखित सम्मति दी है—जिन बैंकों में

चालू खाता तथा सेविङ्ग बैंक खाता दोनों ही हों, उनमें चालू खाते की सारी रकम तथा सविंग बैंक खाते की ७५ प्रतिशत रकम नकदा तथा ऐसी सिक्यूरटी में रखना चाहिए, जो तुरन्त ही नकदी में परिणत की जा सके। मुद्दती जमा के लिये कमेटी की यह राय है कि जो डिपाज़िट अगले बारह महीनों में देनी हो उसकी आधी रकम नकदी में रहे। किन्तु इस नियम के अनुसार कहीं काम नहीं होता, प्रत्येक प्रान्त ने अपने नियम बना रखे हैं। प्राय नकदी इससे कम ही रहती है।

लाभ—सेन्ट्रल बैङ्क प्रतिवर्ष वार्षिक लाभ का २५ प्रतिशत रक्षित कोष में जमा करते हैं और शेष हिस्सेदारों में बाँट दिया जा सकता है, किन्तु सेन्ट्रल बैंकों के उपनियमों से अधिक से अधिक लाभ की दर निश्चित कर दी जाती है, जिससे अधिक लाभ हिस्सेदारों में नहीं बाँटा जा सकता।

सेन्ट्रल बैङ्क ६ प्रतिशत से १० प्रतिशत तक लाभ बाँटते हैं, अधिकतर प्रान्तों में ६ प्रतिशत ही बाँटा जाता है। साधारण रक्षित कोष के अतिरिक्त कोई कोई सेन्ट्रल बैंक इमारत, बट्टाखाता, तथा लाभ-हानि-सन्तुलन के लिये विशेष कोष जमा करते हैं। रक्षित कोष का रुपया सिक्यूरिटी में या प्रान्तीय बैंक में लगा दिया जाता है, अथवा वह बैंक में ही रहता है और कार्यशील पूँजी की वृद्धि करता है।

सूद की दर—सेन्ट्रल बैंकों की सूद की दर भिन्न भिन्न प्रान्तों में जुदा-जुदा है। किन्तु डिपाज़िट के सूद तथा प्रारम्भिक समितियों से लिए जानेवाले सूद में, २ से ५ प्रतिशत का अन्तर रहता है। बिहार, उड़ीसा, संयुक्तप्रांत तथा ग्वालियर में यह अन्तर ४ से ५ प्रतिशत तक होता है। अन्य प्रान्तों में अन्तर केवल दो या तीन प्रतिशत है। जिन बैंकों का लनदेन कम होता है, उनका प्रबन्ध व्यय अपेक्षाकृत अधिक होने के कारण उन्हें अन्तर अधिक रखना पड़ता है। कुछ प्रान्तों में विशेष प्रकार का 'लैंड टेनोर' (भूमि स्वत्व) होने के कारण

रुपया अधिक मारा जाता है, इस कारण भी अन्तर अधिक रखना पड़ता है।

कर्मचारी—सेन्ट्रल बैंक अपने से सबंधित समितियों की देखभाल रखते हैं, तथा उन पर अपना नियन्त्रण रखते हैं। इस कार्य के लिए उन्हें कुछ कर्मचारी रखने पड़ते हैं। कर्मचारी ऋण के प्रार्थनापत्रों की जाँच करते हैं और सम्पत्ति का लेखा तैयार करते हैं जो समितियाँ अपने पुराने ऋण को चुकाने के लिए अधिक समय माँगती हैं, उनके प्रार्थनापत्रों के विषय में भी जाँच करते हैं और समिति के सदस्यों से रुपया वसूल करने में, सहायक होते हैं। कहीं कहीं सेन्ट्रल बैंक के कर्मचारी ही सदस्यों से रुपया वसूल कर लेते हैं। ऐसी परिस्थिति में सदस्य समिति को कुछ नहीं समझता और समिति का कोई प्रभाव नहीं रहता। किसी किसी प्रांत में ये कर्मचारी समितियों का हिसाब रखते हैं, तथा वार्षिक सभा का आयोजन भी करते हैं। जहाँ नई समितियों की स्थापना करने के लिये सहकारी विभाग विशेष कर्मचारी नियुक्त नहीं करता, वहाँ ये कर्मचारी नवीन समितियों की स्थापना भी करते हैं। इसके अतिरिक्त ये लोग सहकारिता सम्बन्धी प्रचार कार्य भी करते हैं। किन्तु अब इनमें से कुछ कार्य प्रांतीय इंस्टिट्यूट करने लगी हैं। कुछ प्रान्तों में समितियों की देखभाल का कार्य सुपरवाइजिङ्ग यूनियन को दिया गया है।

सेन्ट्रल बैंकों की आय व्यय की जाँच सरकार द्वारा नियुक्त आय व्यय परीक्षक करते हैं। ये परीक्षक वसूल न हुए रुपये के विषय में भी जाँच करते हैं तथा सेन्ट्रल बैंकों की आर्थिक स्थिति को भी देखते हैं। रजिस्ट्रार कुछ प्रश्न निश्चित करता है, जिनका उत्तर तथा आय-व्यय परीक्षक की रिपोर्ट रजिस्ट्रार के पास जाती है।

सेन्ट्रल बैंक का निरीक्षण रजिस्ट्रार तथा सहकारी विभाग के कर्मचारी करते हैं। जहाँ प्रान्तीय बैंक है, वहाँ उनके मेनेजर तथा डायरेक्टर भी

निरीक्षण करते हैं। किंतु यह समस्या है कि निरीक्षण उचित रूप से नहीं होता, क्योंकि रजिस्ट्रार तथा उनके कर्मचारी कुछ ही बैंकों का निरीक्षण कर पाते हैं। प्रत्येक बैंक वार्षिक बैलेंस-शीट (लेनी देनी का लेखा) तैयार करके उसे आय-व्यय-परीक्षक की रिपोर्ट के सहित रजिस्ट्रार तथा हिस्सेदारों के पास भेजता है। बैलेंस-शीट के अतिरिक्त प्रत्येक बैंक को लाभ और हानि का, तथा आमदनी और खर्च का ब्योरा भी सरकार के पास भेजना पड़ता है। सेंट्रल बैंक रजिस्ट्रार को तिमाही रिपोर्ट भेजते हैं, जिसमें उनकी आर्थिक स्थिति का ब्योरा रहता है। प्रायः सेंट्रल बैंक अपनी शाखाएँ नहीं खोलते, किंतु उन सेंट्रल बैंकों को, जिनका क्षेत्र बहुत बड़ा है, जिनसे सम्बन्धित समितियों की संख्या अधिक है, शाखाएँ खोलने की आज्ञा दे दी गई है।

बैंकों की स्थिति—भारतवर्ष में सब मिलाकर छः सौ सेंट्रल बैंक हैं—पंजाब १२०, बंगाल ११७, संयुक्तप्रांत ७०, बिहार उड़ीसा ६८, मध्यप्रान्त ३५, मद्रास ३० आसाम २०, बम्बई ११ और देशी राज्यों में हैं। इन सेंट्रल बैंकों के लगभग ८०,००० व्यक्ति और १,४०,००० समितियाँ सदस्य हैं। समस्त कार्यशील पूँजी ७६ करोड़ रुपये से अधिक है जिसमें हिस्सा पूँजी ६ प्रतिशत, रक्षित कोष १४ प्रतिशत, डिपाज़िट ५६ प्रतिशत, प्रान्तीय बैंक से लिया हुआ ऋण १४ प्रतिशत, तथा सरकार से लिया हुआ ऋण डेढ़ प्रतिशत है। इन आँकड़ों को देखने से ज्ञात होता है कि सेंट्रल बैंकों के पास २३ प्रतिशत के लगभग उनकी निज की पूँजी है। परन्तु रक्षित कोष इनकी ठीक स्थिति को नहीं बतलाता, क्योंकि बहुत सी साख समितियाँ, जो इन बैंकों से रुपया उधार लेती हैं, वे अपना ऋण अदा नहीं करेंगी, और यह हानि बैंकों को उठानी पड़ेगी।

मद्रास, बम्बई और मध्यप्रान्त-बरार के सेंट्रल बैंकों का क्षेत्र विस्तृत

है। अधिकतर एक जिले में एक बैङ्क है। परन्तु बङ्गाल, बिहार, उड़ीसा और पंजाब में एक बहुत छोटे क्षेत्र (ताल्लुका) में एक बैङ्क होता है। संयुक्तप्रान्त के कुछ जिलों में तो प्रत्येक तहसील में एक बैङ्क है, और कुछ में केवल एक एक ही बैङ्क कार्य करता है।

आंकड़ों से यह भी ज्ञात होता है कि सेन्ट्रल बैंक उधार पूँजी (डिपाजिट और कर्ज की रकम) का ६० प्रतिशत समितियों को उधार दे देते हैं। इस से यह सिद्ध होता है कि सेन्ट्रल बैङ्क अपेक्षाकृत कम नक़्दी रखते हैं, यह व्यापारिक दृष्टि से ठीक नहीं है। यद्यपि वसूल न होनेवाले ऋण के आंकड़े प्राप्त नहीं हैं परन्तु यह निश्चित है कि सेन्ट्रल बैंकों का बहुत सा रुपया मारा जावेगा, क्योंकि साख समितियों की स्थिति ठीक नहीं है।

मोटे तौर पर मदरास, बम्बई और पंजाब के सेन्ट्रल बैंकों की आर्थिक स्थिति अच्छी है। बिहार, बंगाल, उड़ीसा, मध्यप्रान्त और बरार के सेन्ट्रल बैंकों की स्थिति अत्यन्त चिन्ताजनक हो गई थी, उनके जीर्णोद्धार का प्रयत्न किया गया। इन प्रान्तों में बहुत से बैंकों को तो अपना कारोबार इस लिए बन्द कर देना पड़ा कि वे डिपाज़िट करने वालों को उनका रुपया देने में असमर्थ थे। उत्तरीय उड़ीसा के सेन्ट्रल बैङ्कों ने अपना प्रबन्ध ६ वर्ष के लिए रजिस्ट्रार के हाथ में सौंप दिया। इन प्रान्तों में सेन्ट्रल बैङ्कों की असफलता के मुख्य कारण ये हैं —समितियों को अंधाधुन्ध ऋण देना, दोषपूर्ण निरीक्षण, बैंकिंग सिद्धान्तों की अवहेलना, और प्रारम्भिक समितियों का दोषपूर्ण संगठन। अन्य प्रान्तों में सेंट्रल बैङ्कों की स्थिति साधारण है।

---

## आठवाँ परिच्छेद

# प्रान्तीय सहकारी बैंक या सर्वोपरि बैंक

—०—

**प्रान्तीय बैंकों की आवश्यकता**—देश में सहकारिता आन्दोलन के क्रमशः फैलने पर यह अनुभव होने लगा कि यद्यपि सेंट्रल बैंक सहकारी समितियों का निरीक्षण तथा देखभाल करने में रजिस्ट्रार का हाथ बँटाते हैं तथापि आंदोलन में जितनी पूँजी की आवश्यकता होती है, उसका उचित प्रबन्ध नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त सेन्ट्रल बैंकों का नियन्त्रण तथा उनके द्वारा मान्य समितियों को यथेष्ट पूँजी का उचित प्रबंध करने की भी आवश्यकता प्रतीत हुई। मैकलगन कमेटी ने, जो १९१५ में सहकारिता आंदोलन की जाँच के लिए बैठाई गई थी, प्रत्येक प्रांत में प्रांतीय बैंक स्थापित करने की आवश्यकता बतलाई। वास्तव में सेन्ट्रल बैंकों का आपस में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ऐसी संस्था की अत्यंत आवश्यकता थी। प्रान्तीय बैंकों से पूर्व यह काम रजिस्ट्रार करता था। यदि किसी सेन्ट्रल बैंक को पूँजी की अधिक आवश्यकता होती तो रजिस्ट्रार सूचना पाने पर प्रांत के प्रत्येक सेन्ट्रल बैंक को गश्ती चिट्ठी लिख देता था। पर इससे उद्देश्य सिद्ध नहीं होता था और साथ ही रजिस्ट्रार का बहुत सा समय इस कार्य में लग जाता था। कुछ सेन्ट्रल बैंक अपनी आवश्यकता से अधिक पूँजी आकर्षित कर लेते थे, और कुछ को यथेष्ट पूँजी नहीं मिलती थी इसलिए ऐसे प्रांतीय बैंकों की बहुत आवश्यकता प्रतीत हुई जो पहले प्रकार के बैंकों की अतिरिक्त पूँजी जमा करें और उसे दूसरे प्रकार के बैंकों को दे दें। इसके अतिरिक्त द्रव्य-बाजार (मनी-मार्केट) तथा

सहकारिता आन्दोलन के बीच में सम्बन्ध स्थापित करने के लिए भी प्रान्तीय बैंकों की आवश्यकता प्रतीत हुई।

भारतवर्ष में इस समय नौ प्रान्तीय सहकारी बैंक काम कर रहे हैं —मदरास, बम्बई, सिंध, पञ्जाब, बङ्गाल, बिहार, मध्यप्रान्त बरार आसाम और संयुक्तप्रान्त। देशी राज्यों में हैदराबाद तथा मैसूर के सर्वोपरि बैंक प्रान्तीय सहकारी बैंकों की श्रेणी में आते हैं। इन ग्यारह बैंकों को समस्त कार्यशील पूँजी १८ करोड़ रुपये से अधिक है। इन्दौर, ट्रावनकोर, ग्वालियर, बड़ौदा, कश्मीर और भोपाल में कोई सेन्ट्रल बैंक इस काम के लिए चुन लिया गया है, वह सर्वोपरि बैंक का काम करता है।

सदस्यता—इन बैङ्कों का संगठन एकसा नहीं है और न इन सब बैङ्कों में सदस्यता ही एकसा है। पञ्जाब और बंगाल को छोड़कर और सब प्रान्तों में व्यक्ति भी इन बैङ्कों के सदस्य होते हैं। बंगाल और पञ्जाब में व्यक्ति इन बैङ्कों के हिस्सेदार नहीं हो सकते, वहाँ सहकारी साख समितियाँ और सहकारी सेन्ट्रल बैङ्क ही प्रान्तीय बैङ्क के सदस्य हो सकते हैं। बम्बई, पञ्जाब, बिहार, मध्यप्रान्त-बरार, और आसाम में प्रान्तीय बैंकों के सदस्य व्यक्तियों के अतिरिक्त प्रारम्भिक सहकारी समितियाँ और सहकारी सेन्ट्रल बैङ्क होते हैं। मदरास प्रान्तीय सहकारी बैङ्क के सदस्य केवल सेन्ट्रल बैङ्क ही हो सकते हैं, प्रारम्भिक साख समितियाँ नहीं हो सकतीं। बङ्गाल और बिहार में यद्यपि कुछ प्रारम्भिक सहकारी साख समितियाँ सदस्य हैं, परन्तु व्यवहार में वहाँ भी सेन्ट्रल बैङ्क ही उनके सदस्य हैं। सिंध में कोई सेन्ट्रल बैङ्क नहीं है, इसलिये वहाँ के प्रान्तीय बैङ्क के सदस्य केवल व्यक्ति तथा प्रारम्भिक सहकारी साख समितियाँ ही हैं। इस मिश्रित साख सदस्यता के कारण साधारण सभाओं की बैठक करने तथा उसमें वोट देने की पद्धति का निश्चय करने में बड़ी उलझन होती है। यही कारण है कि मदरास सहकारिता कमेटी (१६४०)

ने व्यक्तियों को सदस्य न रखने की सिफारिश की।)

सचालन—प्रान्तीय बैंकों को भली भाँति चलाने के लिये व्यापारिक बुद्धि तथा बैंकिंग की योग्यता चाहिये। इसलिये बैंक के डायरेक्टरों या सचालकों में इन गुणों वाले व्यक्ति भी होने चाहिएँ। किन्तु सचालक-बोर्ड में इन्हें प्रधानता देने से सम्भव है कि सहकारिता के हितों की रक्षा न हो। इसलिये डायरेक्टरों में प्रधानता तो सहकारिता वादियों को ही रहनी चाहिए, किन्तु कुछ ऐसे व्यापारी तथा बैंकिंग की योग्यता रखनेवालों को भी ले लेना चाहिए, जिन्हें सहकारिता आन्दोलन से सहानुभूति हो। यह तो हुई सिद्धान्त की बात, अब देखना यह है कि हमारे प्रान्तीय बैंकों का सचालन कैसे होता है।

भिन्न भिन्न बैंकों के संचालक बोर्ड का निर्माण उनके अपने-अपने उपनियमों के द्वारा होना है। दो या तीन के अतिरिक्त और सब प्रान्तीय बैंकोंमें हिस्सेदारों के बाहर से भी डायरेक्टरों को नियुक्त करने की परिपाटी प्रचलित है। पञ्जाब में सहकारिता विभाग का रजिस्ट्रार तथा सहकारिता विभाग का आर्थिक सलाहकार पदेन (अपने पद के कारण) डायरेक्टर होते हैं। बङ्गाल में रजिस्ट्रार बोर्ड में तीन व्यक्तियों को मनोनीत करता है। मध्यप्रान्त-बरार के प्रान्तीय बैंक के बोर्ड में रजिस्ट्रार तथा प्रान्तीय सरकार का फाइनैंस सेक्रटरी पदेन डायरेक्टर होते हैं। बिहार में रजिस्ट्रार डायरेक्टर होता है। वहाँ सहकारिता आन्दोलन के पुनर्निर्माण में बैंक प्रान्तीय सरकार के नियन्त्रण में दे दिया गया है। प्रान्तीय सरकार जिसे प्रान्तीय सहकारी बैंक का सलाहकार नियुक्त करेगी, वही उसका (उस समय तक के लिये जब तक कि बैंक सरकार के नियन्त्रण में रहेगा) मैनेजिंग डायरेक्टर होगा। सिन्ध प्रान्तीय बैंक में भी मनोनीत डायरेक्टर होते हैं। मदरास, बम्बई और सम्भवत आसाम में मनोनीत डायरेक्टर नहीं होते। मदरास में रजिस्ट्रार को पदेन प्रान्तीय बैंक का डायरेक्टर बनाने का प्रयत्न हो

रहा है।

संयुक्तप्रान्त में प्रांतीय सहकारी बैंक सन् १६४४ में, लखनऊ में स्थापित किया गया था। सरकार ने इसे तीन वर्ष तक पंद्रह हजार रुपए की सहायता दी। बैङ्क के सदस्य व्यक्ति और सहकारी समितियाँ दोनों ही हैं। रजिस्ट्रार अपने पद के कारण इसका चेयरमैन होता है। डायरेक्टरों में से दो को सरकार नियुक्त करती है, दो व्यक्तिगत हिस्सेदारों के, और पाँच सहकारी समितियों के होते हैं। बैङ्क की कार्यशील पूँजी पचास लाख रुपए है। इसने अपनी शाखाएँ बाराबंकी, कानपुर और सीतापुर में स्थापित की हैं भविष्य में इन्हें और बढ़ाने का विचार है।

कार्यशील पूँजी—प्रांतीय बैंकों की कार्यशील पूँजी लगभग १३ करोड़ रुपये है, जिसमें लगभग १६ प्रतिशत उनकी निज की, और शेष उधार ली हुई है। उधार ली हुई पूँजी में सहकारी समितियों, सेन्ट्रल बैंकों तथा व्यक्तियों की डिपाजिट मुख्य हैं। प्रान्तीय बैङ्क चालू, सेविंग्स और मुद्दती तीनों तरह की डिपाजिट लेते हैं। अधिकांश डिपाजिट एक से तीन वर्ष के लिए ली जाती हैं। इससे अधिक समय के लिए डिपाजिट बहुत कम ली जाती है। जो बैंक इससे अधिक समय के लिए डिपाजिट लेते थे, उन्हें अब कठिनाई का अनुभव हो रहा है, क्योंकि पिछले वर्षों में सूद की दर तेजी से घटती गई है। प्रान्तीय साख अच्छी है, वे सहकारिता आन्दोलन और बाहर से भी डिपाजिट आकर्षित करते हैं। जहाँ तक सूद देने का प्रश्न है, वे अन्य व्यापारिक बैंकों की अपेक्षा बहुत अधिक सूद नहीं देते। मदरास प्रान्तीय बैंक चालू खाते पर पौन प्रतिशत एक वर्ष की मुद्दती जमा पर ढाई प्रतिशत तथा दो वर्ष की जमा पर पौने तीन प्रतिशत सूद देता है, उसको यथेष्ट डिपाजिट मिल जाती है। पंजाब प्रांतीय बैंक व्यक्तियों को चालू खाते पर कोई सूद नहीं देता। द्रव्य बाजार के अनुसार यह बैङ्क भी अपनी

सूद की दर निर्धारित करते हैं।

पूँजी लगाना—रिजर्व बैंक ने प्रांतीय सहकारी बैंकों में यह दोष बताया है कि वे नकदी रुपया और शीघ्र भँज सकनेवाली लेनी यथेष्ट नहीं रखते और आवश्यकता से अधिक रुपया बाहर लगा देते हैं। उसने प्रान्तीय बैंकों को राय दी थी कि वे अपनी देना को ४० प्रतिशत नकदी अथवा बैंकों में जमा के रूप में रखें। भिन्न-भिन्न प्रांतीय सरकारों ने भी कुछ नियम बना दिये हैं, जिनके अनुसार प्रांतीय बैंकों को अपनी देनों के एक निश्चित अनुपात में नकदी तथा शीघ्र भँज सकनेवाली लेना रखनी पड़ती है। प्रान्तीय बैंक व्यवहार में १० से ५० प्रतिशत कार्यशील पूँजी सरकारी सिक्यूरिटी में लगाते हैं, कुछ रुपया अन्य व्यापारिक बैंकों तथा प्रांतीय बैंकों में जमा करते हैं, कुछ नकदी अपने पास रखते हैं, और शेष अपने सदस्यों को उधार देते हैं।

जहाँ तक रुपया लगाने का प्रश्न है, रिजर्व बैंक का दोषारोपण उचित नहीं मालूम होता। रिजर्व बैंक ने प्रांतीय बैंकों को यह सलाह दी थी कि उन्हें अपने सदस्यों को ६ महीने से एक वर्ष तक के लिए ही ऋण देना चाहिए। यद्यपि रिजर्व बैंक की इस सलाह को प्रांतीय सहकारी बैंक पूरी तरह से नहीं मानते, फिर भी वे अब प्रायः उत्पादन और खेती की पैदावार के क्रय-विक्रय के लिये ही, थोड़े समय के लिए, ऋण देते हैं। बङ्गाल प्रांतीय बैंक तो फसलों को उत्पन्न करने के लिए केवल कम समय के ही ऋण देने लगा है। परन्तु किसान को साख की जितनी आवश्यकता कम समय के लिये है, उतनी ही मध्यम समय, यानी दो या तीन वर्षों के लिये भी है। अतएव प्रांतीय सहकारी बैंकों को ये दोनों प्रकार की साख देना होता है। यदि प्रांतीय सहकारी बैंक अपनी निजी पूँजी का ध्यान रखने के साथ, डिपॉजिटों तथा ऋण के समय का ध्यान रखें तो वे आसानी से कम समय और मध्यम समय के लिए साख का प्रबन्ध कर सकते हैं। हाँ, लम्बे समय

अर्थात् १० से २० वर्ष तक के लिये वे साख नहीं दे सकते, उसके लिये भूमि बन्धक बैंक ही उपयुक्त संस्था है।

सदस्यों को कर्ज देने के सम्बन्ध में भी सब प्रांतीय बैंक एकसा व्यवहार नहीं करते। बम्बई प्रांतीय बैंक मुख्यतः प्रारम्भिक सहकारी साख समितियों को, अपनी शाखाओं के द्वारा, कर्ज देता है, केवल सेन्ट्रल बैंकों से कर्ज लेता है। जहाँ तक सेन्ट्रल बैंकों का प्रश्न है, प्रान्तीय बैंक सन्तुलन-केन्द्र है और उन्हें समय पड़ने पर ओवरड्राफ्ट (जमा से अधिक निकालने की स्वीकृति) इत्यादि देता है। अब कुछ समय से प्रांतीय बैंक 'बी' श्रेणी के सदस्यों को भी कर्ज देने लगा है। यह कर्ज लेनेवाले उन साख समितियों के सदस्यों में से होते हैं, जो प्रांतीय बैंक से सम्बन्धित हैं, और वे अपनी पैदावार की जमानत पर ऋण लेते हैं। बम्बई प्रान्तीय बैंक औद्योगिक सहकारी साख समितियों को भी उनके तैयार माल या कच्चे माल की जमानत पर कर्ज देता है। मदरास बैंक केवल सेन्ट्रल बैंकों से ही कारोबार करता है, वह प्रारम्भिक समितियों से कोई मतलब नहीं रखता। लेकिन वहाँ भी सदस्यों एवं गैर सदस्यों को सरकारी सिक्यूरिटी, रिज़र्व बैङ्क और इम्पीरियल बैङ्क के हिस्सों तथा मदरास प्रांतीय सहकारी बैङ्क में उनकी डिपाज़िट की ज़मानत पर ऋण देने की सुविधा कर दी गई है। पंजाब प्रांतीय बैंक व्यक्तियों को केवल बैङ्क में जमा की हुई उनकी डिपाज़िट की ज़मानत पर ऋण देता है। सिंध में कोई सेन्ट्रल बैंक न होने से, प्रांतीय बैंक सीधे सहकारी साख समितियों को ही ऋण देता है। यद्यपि पञ्जाब, बिहार, मध्यप्रांत बरार व प्रांतीय बैङ्कों के सदस्य सेन्ट्रल बैंक और प्रारम्भिक समितियाँ दोनों ही हैं, वे ऋण सेन्ट्रल बैंकों को ही देते हैं।

प्रांतीय बैंकों की आर्थिक मजबूती उनके दिये हुये ऋण की जमानत पर निर्भर है, और उस जमानत की मज़बूती अन्त में इस बात पर निर्भर है कि जो रुपया किसान को समितियों द्वारा दिया गया है,

वह वसूल किया जा सकता है या नहीं। प्रारम्भिक साख समितियों की अपने दिये रुपये को वसूल करने की योग्यता ऋण लेनेवाले सदस्य की ऋण अदा करने की योग्यता तथा अन्य बहुत से कारणों पर निर्भर है। इनमें से कुछ तो निश्चित हैं कुछ का नियन्त्रण हो सकता है और कुछ का नहीं हो सकता, कुछ प्रकृति पर निर्भर हैं तो कुछ मनुष्यों की इच्छा पर। इन विविध कारणों से हमारे अधिकांश ग्रामीणों का कारबार घाटे का है। जितना व्यय होता है उससे कम आय होती है। सहकारी समितियों के कुछ सदस्य तो ऐसे हैं, जिनका काम बिना ऋण लिए चल ही नहीं सकता। बहुत लोगों की निर्धनता ही ऋणी होने का प्रधान कारण है। बहुत से ईमानदार सदस्य भी अपना ऋण नहीं चुका पाते, क्योंकि वे नितान्त असमर्थ हैं। यही सहकारी साख आन्दोलन की निर्बलता है।

प्रांतीय बैंकों का लगभग वही दशा है, जो सहकारी साख समितियों की है। ऋण बहुत समय हो गया, चुकाये नहीं गये, ऐसे कर्ज की रकम बढ़ती आ रही है जो वसूल नहीं हो सकेंगे, और जो ज़मानत कर्ज के लिये दी गई थी, प्रांतीय बैंकों को उसे जब्त करना पड़ रहा है। हर जगह कुछ कम ज्यादा यही स्थिति है। बरार में तो प्रांतीय बैंक के पास कर्ज की वसूली के एवज़ में भूमि आगई है, जिसके खरीददार नहीं मिलते। बरार, बङ्गाल और बिहार में ग्राम्य सहकारी समितियों की लेनी (ज़मानत) को जब्त करने का आन्दोलन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा है। वहाँ आंदोलन के पुनर्निर्माण का कार्य चल रहा है। आसाम में स्थिति बहुत खराब है, वहाँ के रजिस्ट्रार ने भी आंदोलन के पुनर्निर्माण की आवश्यकता बतलाई है। युद्ध से उत्पन्न हुई परिस्थिति में खेती की पैदावार का मूल्य बेहद बढ़ गया है और किसान पर कर्ज का बोझ कुछ हल्का हो गया है। ऐसी दशा में स्थिति के सँभल जाने की पूर्ण आशा है।

इस सम्बन्ध में एक बात महत्वपूर्ण है, जिसको हमें भूल न जाना चाहिए। विशेष कर बम्बई और पञ्जाब में, जिन प्रांतीय बैंकों ने लम्बे समय के लिये ऋण देने का प्रयत्न किया और इस अभिप्राय से भूमि-बन्धक बैंकों को ऋण देने के लिये डिबेञ्चर* बेचे, वे कठिनाई में पड़ गये। पञ्जाब और आसाम में प्रांतीय बैंक ही प्रारम्भिक भूमि बन्धक बैङ्कों को कर्ज देते थे किन्तु अब वहाँ भूमि बन्धक बैंक काम नहीं करते, इसलिए प्रांतीय बैंकों को लम्बे समय के लिए कर्ज देने का प्रश्न ही नहीं उठता। मदरास में एक सेन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक है जो प्रांत भर के सभी भूमि बन्धक बैंकों को कर्ज देता है, वहाँ प्रांतीय सहकारी बैंक को इसके लिए एक पृथक् विभाग रखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। मध्यप्रांत बरार का प्रांतीय सहकारी बैंक भूमि बन्धक बैंकों को भी कर्ज देता है, इस कारण उसमें एक अलग विभाग इस कार्य के लिए स्थापित कर दिया गया है। बङ्गाल में प्रांतीय सहकारी बैंक सरकार की गारंटी पर ही भूमि बन्धक बैंकों को कर्ज देना चाहता है।

**प्रान्तीय बैङ्क और सेन्ट्रल बैङ्क का सम्बन्ध**—प्रांतीय सहकारी बैंकों तथा सेन्ट्रल बैंकों का सम्बन्ध भिन्न भिन्न प्रांतों में जुदा जुदा है। वे सेण्ट्रल बैंकों पर कोई नियन्त्रण नहीं रखते। सेंट्रल बैंक अपना रुपया प्राय प्रांतीय बैंकों में अथवा सुदृढ़ व्यापारिक बैंकों में जमा कर देते हैं। मदरास प्रांत में सेन्ट्रल बैंक अपना सारा रक्षित कोष प्रांतीय सहकारी बैंक में रखते हैं। बम्बई में प्रांतीय बैंक सहकारी संस्थाओं की मुद्दती जमा पर व्यक्तियों से अधिक सूद देता है। वहाँ प्रांतीय बैंक के नेतृत्व में बम्बई सहकारी बैंक एसोसियेशन स्थापित है, जो सेन्ट्रल

---

*डिबेञ्चर वह ऋण पत्र है जो बैङ्क या कम्पनी लम्बे समय के लिए साधारण जनता से ऋण लेकर उन्हें दे देती है। ऋण पर निश्चित दर से सूद दिया जाता है।

बैंकों को सम्बद्ध करती है। मदरास में प्रान्तीय बैंक सेन्ट्रल बैंकों का वार्षिक सम्मेलन करता है, जिसमें उन बैंकों की नीति और उनके सम्बन्ध के प्रश्नों पर विचार होता है। मदरास प्रांतीय बैंक ने सम्बन्धित सेंट्रल बैंकों का, अपने डायरेक्टरों द्वारा, निरीक्षण कराने की परिपाटी पहले ही स्थापित कर दी थी, किन्तु अब मदरास सहकारिता क़ानून के अनुसार उसके कर्मचारी उन बैंकों का निरीक्षण कर सकेंगे। मध्यप्रांत में भी प्रांतीय बैंक अपने इन्सपेक्टर द्वारा सम्बन्धित सेंट्रल बैंकों का निरीक्षण कराता है।

उन सभी प्रांतों में जहाँ प्रांतीय बैंक स्थापित हैं, सेंट्रल बैंक एक दूसरे को सीधे कर्ज़ नहीं दे सकते। वास्तव में प्रांतीय बैंकों का कार्य तो यह है कि वे सेन्ट्रल बैंकों के सन्तुलन केन्द्र का काम करें, उन्हें गौद्धश, द्रव्य बाज़ार, कर्ज़ देन, और सूद की दर निर्धारित करने के सम्बन्ध में परामर्श दें। यद्यपि प्रांतीय बैंकों का सेंट्रल बैंकों पर नियन्त्रण वाञ्छनीय नहीं है, प्रांतीय बैंकों द्वारा उनका निरीक्षण आवश्यक है।

**प्रान्तीय बैङ्क और सहकारिता विभाग**—पिछले दिनों इस प्रश्न को लेकर बहुत कुछ खींचातानी रही कि सहकारिता विभाग के रजिस्ट्रार का प्रांतीय बैंकों से क्या सम्बन्ध हो। कहीं कहीं रजिस्ट्रार द्वारा बहुत नियन्त्रण और हस्तक्षेप होता है। इससे बड़ी उलझन पैदा हो जाती है। बङ्गाल, बिहार, और मध्यप्रांत-बरार में रुपया जमा करने वालों का अधिकांश रुपया मारा गया क्योंकि प्रारंभिक साख समितियों से कर्ज़ वसूल नहीं किया जा सकता। वहाँ यह प्रश्न उठाया गया कि यह रुपया सरकार दे, क्योंकि समितियों को वह रुपया सहकारिता विभाग की सिफ़ारिश पर दिया गया था, जो सरकार का एजेंट है। बर्मा में प्रांतीय बैंक जब (१६२८-२६) अपने डिपाज़िटरों का रुपया अदा नहीं कर सका तो वहाँ की सरकार को ३० लाख रुपया देना पड़ा। इसी प्रकार की स्थिति बङ्गाल में उत्पन्न हो गई, जब सहकारिता

विभाग के रजिस्ट्रार ने प्रांतीय बैंक को जूट विक्रय समितियों को कर्ज़ देने की सिफारिश की और वे समितियाँ रुपया अदा न कर सकीं। सरकार को २४ लाख रुपये, प्रान्तीय बैंक की क्षतिपूर्ति के, देने पड़े। परन्तु बङ्गाल, बिहार तथा मध्यप्रान्त बरार से सेन्ट्रल बैंकों को जो भीषण हानि उठानी पड़ी उसे देना सरकार ने मंजूर नहीं किया। प्रान्तीय बैङ्क के कार्य में रजिस्ट्रार या सहकारिता विभाग के अधिक हस्तक्षेप करने से केवल यही उलझन नहीं उत्पन्न होती, वरन् रजिस्ट्रारों के बदलते रहने और उनकी नीति भिन्न भिन्न होने के कारण प्रांतीय बैंक की नीति भी बदलती रहती है। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि रजिस्ट्रार और उसका विभाग प्रांतीय बैंक को केवल अपनी राय और सलाह दे, वह बैंक का डायरेक्टर न हो। प्रांतीय बैंक ऋण देने या न देने का निर्णय स्वयं करे।

**प्रान्तीय बैङ्क और रिजर्व बैङ्क**—रिजर्व बैंक प्रांतीय बैंकों और उनसे सम्बन्धित बैंकों को, सरकारी सिक्यूरिटी की जमानत पर, नक़द साख देता है। परन्तु जहाँ तक सरकारी कागज़ को भुनाने का प्रश्न है, प्रांतीय बैंक और सेन्ट्रल बैंक जब रिजर्व बैंक की इच्छानुसार अपनी आर्थिक स्थिति तथा कारबार को बना लेंगे तभी वह उनके सहकारी कागज़ को भुनाने की सुविधा देगा। कुछ शर्तें पूरी करने पर, रिजर्व बैंक प्रांतीय बैंकों को अपना रुपया एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त में भेजने की सुविधा प्रदान करेगा। इस कार्य के लिए उसने सेन्ट्रल बैंकों को प्रांतीय बैंकों की शाखा मान लिया है। कुछ प्रांतीय बैंकों ने रिजर्व बैंक की योजना को स्वीकार कर लिया है और वे उसमें सम्मिलित हो गये हैं। रिजर्व बैंक ने प्रांतीय बैंकों को अपना बैलैंसशीट (लेनी देनी का लेखा) एक निश्चित रूप में तैयार करने को कहा है और कुछ बैंक वैसा करने भी लगे हैं। जैसे जैसे प्रान्तीय बैङ्क अपने कारोबार में, रिजर्व बैंक की इच्छानुसार सुधार करते जावेंगे, वैसे ही वैसे उनको

आपसी सम्ब व घनिष्ट होता जावेगा। यद्यपि रिजव बैंक की स्थापना से सहकारी बैंकों को अभी तक व सब सुविधाएँ नहीं मिली हैं, जो वे चाहते थे, अब अखिल भारतवर्षीय सहकारी या सर्वोपरि बैंक की आवश्यकता नहीं रहा है।

आय व्यय परीक्षा—प्रा तीय बैंकों का हिसाब सहकारिता विभाग को जाँचना चाहिए, क्योंकि सहकारिता एक्ट के अनुसार रजिस्ट्रार का यह मुख्य काय है। परन्तु बहुत से प्रान्तों के रजिस्ट्रारों ने यह हिसाब पेशेवर आडिटरों द्वारा जँचवाने की आज्ञा दे दी है। किसी किसी प्रान्त में उनके द्वारा आडिट हो जाने पर प्रान्त का सहकारिता विभाग फिर आडिट करवाता है। आय-व्यय परीक्षा के अतिरिक्त इन बैंकों को अपनी आर्थिक स्थिति का तिमाही लेखा, रजिस्ट्रार के द्वारा, प्रान्तीय सरकार को भेजना पड़ता है। प्रान्तीय सरकार उस पर अपना मत प्रकट करती है।

अखिल भारतीय प्रान्तीय सहकारी बैंक एसोशियेसन—इस संस्था का ज म सन् १६२६ में हुआ। इसका मुख्य काय यह है कि प्रत्येक सदस्य बैंक की कायशील पूँजी के आँकड़े समह करे, और सब सदस्यों को सूचित करदे, जिससे किस बैंक को पूँजी की आवश्यकता है और कौन बैंक पूँजी दे सकता है, यह सब को ज्ञात हो जाय। सदस्य-बैंकों के आर्थिक प्रश्नों पर राय देना तथा उनकी सहायता करना, प्रान्तीय बैंकों की समय-समय पर का फ्रेंस बुलाना, और उसमें प्रान्तीय बैंकों तथा सारे आन्दोलन के सम्ब ध में महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना भी इसी संस्था के कार्य हैं। जब कभी प्रान्तीय बैंकों को सरकार या रिजव बैंक का ध्यान किसी विशेष बात की ओर आकर्षित करना होता है तो यह संस्था उनसे लिखापढ़ी करती है।

प्रान्तीय बैंक सहकारी आन्दोलन के सहुलन केन्द्र होने के अतिरिक्त वे सभी काम करते हैं, जो व्यापारिक बैंक करते हैं, जैसे

विभाग के रजिस्ट्रार ने प्रांतीय बैंक को क्रय विक्रय समितियों को कर्ज़ देने की सिफारिश की और वे समितियाँ रुपया अदा न कर सकीं। सरकार को २४ लाख रुपये, प्रांतीय बैंक को क्षति पूर्ति के, देने पड़े। परन्तु बङ्गाल, बिहार तथा मध्यप्रांत बरार से सेन्ट्रल बैंकों को जो भीषण हानि उठानी पड़ी उसे देना सरकार ने मंजूर नहीं किया। प्रांतीय बैंक के कार्य में रजिस्ट्रार या सहकारिता विभाग के अधिक हस्तक्षेप करने से केवल यही उलझन नहीं उत्पन्न होती, वरन् रजिस्ट्रारों के बदलते रहने और उनकी नीति भिन्न भिन्न होने के कारण प्रांतीय बैंक की नीति भी बदलती रहती है। अस्तु, आवश्यकता इस बात की है कि रजिस्ट्रार और उसका विभाग प्रांतीय बैंक को केवल अपनी राय और सलाह दे, वह बैंक का डायरेक्टर न हो। प्रांतीय बैंक ऋण देने या न देने का निर्णय स्वयं करे।

**प्रान्तीय बैङ्क और रिज़र्व बैङ्क**—रिज़र्व बैंक प्रांतीय बैंकों और उनसे सम्बन्धित बैंकों को, सरकारी सिक्यूरिटी की ज़मानत पर, नकद साख देता है। परन्तु जहाँ तक सरकारी कागज़ को भुनाने का प्रश्न है, प्रांतीय बैंक और सेन्ट्रल बैंक जब रिज़र्व बैंक की इच्छानुसार अपनी आर्थिक स्थिति तथा कारबार को बना लेंगे तभी वह उनके सहकारी कागज़ को भुनाने की सुविधा देगा। कुछ शर्तें पूरी करने पर, रिज़र्व बैंक प्रांतीय बैंकों को अपना रुपया एक प्रांत से दूसरे प्रांत में भेजने की सुविधा प्रदान करेगा। इस कार्य के लिए उसने सेन्ट्रल बैंकों को प्रांतीय बैंकों की शाखा मान लिया है। कुछ प्रांतीय बैंकों ने रिज़र्व बैंक की योजना को स्वीकार कर लिया है और वे उसमें सम्मिलित हो गये हैं। रिज़र्व बैंक ने प्रांतीय बैंकों को अपना बैलेंसशीट (लेनी देनी का लेखा) एक निश्चित रूप में तैयार करने को कहा है और कुछ बैंक वैसा करने भी लगे हैं। जैसे जैसे प्रांतीय बैङ्क अपने कारोबार में, रिज़र्व बैंक की इच्छानुसार सुधार करते जावेंगे, वैसे ही वैसे उनको

पसी सम्ब घनिष्ट होता जावेगा। यद्यपि रिजर्व बैंक की स्थापना से हकारी बैंको को अभी तक व सब सुविधाएँ नहीं मिली हैं, जो वे हते थे, अब अखिल भारतवर्षीय सहकारी या सर्वोपरि बैंक की आव यकता नहीं रही है।

**आय व्यय परीक्षा**—प्रान्तीय बैंकों का हिसाब सहकारिता विभाग को जाँचना चाहिए, क्योंकि सहकारिता एक्ट के अनुसार रजिस्ट्रार का यह मुख्य कार्य है। परन्तु बहुत से प्रान्तों के रजिस्ट्रारों ने यह हिसाब पेशेवर आडिटरों द्वारा जँचवाने की आज्ञा दे दी है। किसी किसी प्रान्त में उनके द्वारा आडिट हो जाने पर प्रान्त का सहकारिता विभाग फिर आडिट करवाता है। आय-व्यय परीक्षा के अतिरिक्त इन बैंकों को अपनी आर्थिक स्थिति का तिमाही लेखा, रजिस्ट्रार के द्वारा प्रान्तीय सरकार को भेजना पड़ता है। प्रान्तीय सरकार उस पर अपना मत प्रकट करती है।

**अखिल भारतीय प्रान्तीय सहकारी बैंक एसोशियेसन**—इस संस्था का जन्म सन् १६२६ में हुआ। इसका मुख्य कार्य यह है कि प्रत्येक सदस्य बैंक की कार्यशील पूँजी के आँकड़े संग्रह करे, और सब सदस्यों को सूचित करदे, जिससे किस बैंक को पूँजी की आवश्यकता है और कौन बैंक पूँजी दे सकता है, यह सब को ज्ञात हो जाय। सदस्य-बैंकों के आर्थिक प्रश्नों पर राय देना तथा उनकी सहायता करना, प्रान्तीय बैंकों की समय-समय पर कान्फ्रेंस बुलाना, और उसमें प्रान्तीय बैंकों तथा साख आन्दोलन के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करना भी इसी संस्था के कार्य हैं। जब कभी प्रान्तीय बैंकों को सरकार या रिजर्व बैंक का ध्यान किसी विशेष बात की ओर आकर्षित करना होता है तो यह संस्था उनसे लिखापढ़ी करती है।

प्रान्तीय बैंक सहकारी साख आन्दोलन के सन्तुलन केन्द्र होने के अतिरिक्त वे सभी कार्य करते हैं, जो व्यापारिक बैंक करते हैं, जैसे

हुंडी पुर्जे का भुनाना इत्यादि। साधारणत प्रान्तीय बैंकों की शाखाएँ नहीं होतीं, किन्तु बम्बई प्रान्तीय बैंक ने, उन क्षेत्रों में जहाँ सेन्ट्रल बैंक नहीं हैं, अपनी शाखाएँ खोल दी हैं, जो उस क्षेत्र की प्रारम्भिक साख समितियों को ऋण देती हैं।

—o—

## नवाँ परिच्छेद

## सहकारी भूमि-बन्धक बैंक

—o—

**भूमि-बन्धक बैङ्कों की आवश्यकता**—पहले बताया जा चुका है कि किसान को साधारण खेतीबारी के कारबार को चलाने के लिए थोड़े समय और मध्यम समय के लिए ऋण की आवश्यकता पड़ती है, इसके अन्तर्गत वह सभी ऋण आ जाता है, जो पशु, बीज, खाद, हल तथा अन्य यन्त्र खरीदने के लिये, लगान देने के लिये, तथा अपने कुटुम्ब के पालन के लिये लिया जाता है। इसके अतिरिक्त किसान को पुराने ऋण चुकाने के लिये, भूमि की चकबन्दी करने और उसको उपजाऊ बनाने के लिये, कूएँ खोदने के लिये तथा कीमती यन्त्र खरीदने के लिये अधिक समय के वास्ते भी ऋण चाहिये।

ग्राम्य सहकारी साख समितियाँ किसानों को थोड़े समय और मध्यम समय के लिये ऋण देती हैं। आरम्भ में जब सहकारिता आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ था, लोगों की यह धारणा थी कि साख समितियाँ अधिक समय के लिये भी ऋण दे सकेंगी, साख समितियों ने अधिक समय के लिए ऋण दिया भी। किन्तु न तो साख समितियों के पास इतनी पूँजी थी कि वे सदस्यों के पुराने ऋण चुका सकें और न ऐसा करना उनके हित में ठीक ही था। इस लिए साख समितियों ने अधिक समय के लिये ऋण देना बन्द कर दिया। अधिकतर प्रान्तीय बैंकिंग

इनक्वायरी कमेटियों का यह सम्मति है कि स्थिर सम्पत्ति को बन्धक रख कर अधिक समय के लिये ऋण देना ग्रामीण साख समितियों के लिए ठीक नहीं है। एक तो साख समितियों के, स्थिर सम्पत्ति की जमानत पर, ऋण देने से व्यक्तिगत साख का महत्व चले जाने की सम्भावना है, जो सहकारिता के सिद्धांतों के विरुद्ध है। दूसरे, सेन्ट्रल बैङ्क तथा ग्रामीण साख समितियों में डिपाजिट थोड़े समय के लिये होता है, और थोड़े समय के लिये जमा किये हुए रुपये से अधिक समय के लिए ऋण देना जोखिम से खाली नहीं है। यह बैंकिंग के सिद्धांत के भी विरुद्ध है। तीसरे, अधिक समय के लिये ऋण देने में सम्पत्ति की जमानत लेते समय उसके मूल्य को आंकने तथा उसके स्वामित्व के विषय में जांच करने के लिये अनुभवी कार्यकर्ताओं और कर्मचारियों की आवश्यकता होती है, जो ग्रामीण समितियों के पास नहीं होते। इसके अतिरिक्त एक कठिनाई यह भी है कि भूमि बन्धक रखने पर उसके सम्बन्ध के कागज ग्रामीण समितियों के पास रखने में जोखिम है, और, सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि सदस्यों के ऋण न चुकाने पर समिति की पूँजी फँस जावेगी और समिति को सदस्य के विरुद्ध डिगरी करा कर उस भूमि को नीलाम करवाना होगा। यह सब कानूनी समिति सफलता पूर्वक नहीं कर सकती।

प्रान्तीय बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटियों की रिपोर्टों से स्पष्ट है कि प्रान्तीय सहकारी बैङ्क सेन्ट्रल बैंक, तथा साख समितियाँ किसान के पुराने ऋण चुकाने में, या भूमि बन्धक रख कर दीर्घ काल के लिए ऋण देने में, असमर्थ हैं। सेन्ट्रल बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए प्रान्तीय बैङ्कों के प्रतिनिधियों ने भी यही सम्मति दी थी। सेन्ट्रल बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटी का भी यही मत है। इधर रिजर्व बैङ्क ने भी इस बात पर बहुत जोर दिया कि सहकारी साख समितियाँ, सेन्ट्रल बैंक तथा प्रान्तीय बैङ्क थोड़े समय के लिए ऋण दें। इस कारण

अथ साख समितियाँ लम्बे समय के लिए ऋण बिलकुल नहीं देतीं। इसके लिये भूमि बन्धक बैंक अधिक उपयुक्त हैं।

भूमि बंधक बैंकों के भेद—भूमि बन्धक बैंक तीन प्रकार के होते हैं—(१) सहकारी, (२) गैर सहकारी (३) अर्ध सहकारी। भूमि बन्धक बैंक के सदस्य ऋण लेनवाले होते हैं, बैंक की अपनी पूँजी नहीं होती। जो भूमि बन्धक रख दी जाती है, उसकी जमानत पर बन्धक बांड ('मारगेज बाँड') बेचे जाते हैं और उनसे पूँजी प्राप्त की जाती है। यह बैंक लाभ को लक्ष्य करके काम नहीं करते, वरन् सूद की दर घटाने का प्रयत्न करते हैं।

गैर सहकारी भूमिबन्धक बैंक मिश्रित पूंजी के होते हैं। जिस प्रकार अन्य व्यापारिक बैंक लाभ की दृष्टि से स्थापित किये जाते हैं, वैसे ही यह बैंक भी हिस्सेदारों की सम्पत्ति होते हैं और लाभ की दृष्टि से चलाये जाते हैं। किसान इत्यादि अपनी भूमिबन्धक रखकर उनसे ऋण लेते हैं। इस प्रकार के बैंक योरोपीय देशों में सवत्र स्थापित किये गये हैं किन्तु राज्य उन पर नियन्त्रण रखता है, जिससे वे ऋण लेने वालों को तंग न करें। अर्ध सहकारी भूमिबन्धक बैंक वे हैं, जो न तो पूर्ण रूप से सहकारी होते हैं, और न गैर सहकारी।

भारतवर्ष में बड़े जमींदारों के लिए गैर सहकारी, तथा किसानों के लिए सहकारी भूमिबन्धक बैंक उपयुक्त होंगे। किन्तु यहाँ जो भी भूमि-बन्धक बैंक स्थापित किये गये हैं, वे अर्ध सहकारी हैं, कोई भी पूर्ण सहकारी नहीं कहा जा सकता। इस समय जो भी कार्य कर रहे हैं वे परिमित दायित्व वाली संस्थाएँ हैं, उनके सदस्य अधिकतर ऋण लेने वाले ही होते हैं। किन्तु कुछ सदस्य ऐसे भी ले लिये जाते हैं जो ऋण लेनेवाले नहीं होते। इन सदस्यों को बैंक के प्रबन्ध में सहायता पहुँचाने तथा पूंजी को आकर्षित करने के उद्देश्य से लिया जाता है। यह लोग प्रान्त के प्रसिद्ध व्यापारी होते हैं। इन सदस्यों को क्रमशः

हटा देने की नीति है, जिसमें बैंक पूर्ण रूप से सहकारी संस्था बन जावे। किन्तु यह बात सब को स्वीकार करनी पड़ती है कि जिस प्रकार रैफीसन सहकारी समितियों में सदस्यों का समिति के कार्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, वैसा इन बैंकों में नहीं होता।

योजना—सन् १६२६ में रजिस्ट्रार सम्मेलन ने एक प्रस्ताव द्वारा भूमि बन्धक बैंकों की एक योजना तैयार की थी वह इस प्रकार है—

बैंक के उद्देश्य—(१) किसानों की भूमि तथा मकानों को छुड़ाना, (२) खेतों की भूमि तथा खेतीबारी के धन्धे की उन्नति करना तथा किसानों के मकानों को बनवाना, (३) पुराने ऋण को चुकाना, (४) भूमि ख़रीदने के लिये रुपया देना।

भूमि-बन्धक बैंक का कार्यक्षेत्र छोटा होना चाहिए, किन्तु इतना छोटा भी न हो कि उसका ठीक प्रबन्ध न हो सके। यह नियम न बनाया जावे कि ऋण केवल मात्र समितियों को ही दिया जावेगा, हाँ, यदि ऋण लेनेवाला ग्राम्य समितियों का सदस्य हो तो उसके विषय में समिति का मत ले लिया जावे, किन्तु समिति पर उस ऋण का कोई उत्तरदायित्व न रहे।

सदस्य को उसकी सम्पत्ति के मूल्य के आधे से अधिक ऋण न दिया जाय। प्रत्येक सदस्य बैंक का हिस्सा खरीदे, जिससे बैंक के के पास अपनी निजी पूँजी हो जावे, उसकी जमानत पर बैंक को बाहर से पूँजी मिल सके। ऋण लेनेवाले के हिस्से का मूल्य, जितना ऋण वह लेना चाहता है उसका बीसवाँ हिस्सा होना चाहिए। प्रत्येक बैंक अपनी आर्थिक स्थिति को देखते हुए एक रकम निश्चित कर ले, जिससे अधिक ऋण किसी भी सदस्य को न दिया जावे। प्रान्त के सब भूमि-बन्धक बैंक अपना एक संगठन करें और एक केन्द्रीय संस्था स्थापित की जावे। केवल केन्द्रीय संस्था ही डिबेंचर बेचे, पृथक् पृथक्

अब साख समितियाँ लम्बे समय के लिए ऋण बिलकुल नहीं देतीं। इसके लिये भूमि व धक बैंक अधिक उपयुक्त हैं।

भूमि बंधक बैंकों के भेद—भूमि व धक बैङ्क तीन प्रकार के होते हैं—(१) सहकारी, (२) गैर सहकारी (३) अर्ध सहकारी। भूमि व धक बैङ्क के सदस्य ऋण लेनेवाले होते हैं, बैङ्क की अपनी पूँजी नहीं होती। जो भूमि व धक रक्खी जाती है, उसका जमानत पर बन्धक बाँड ('मार्टगेज बाँड') बेचे जाते हैं और उनसे पूँजी प्राप्त की जाती है। यह बैङ्क लाभ को लक्ष्य करके कार्य नहीं करते, वरन् सूद की दर घटाने का प्रयत्न करते हैं।

गैर सहकारी भूमि-बन्धक बैङ्क मिश्रित पूंजी के होते हैं। जिस प्रकार अन्य व्यापारिक बैंक लाभ की दृष्टि से स्थापित किये जाते हैं, वैसे ही यह बैङ्क भी हिस्सेदारों की सम्पत्ति होते हैं और लाभ की दृष्टि से चलाये जाते हैं। किसान इत्यादि अपनी भूमि बन्धक रखकर उनसे ऋण लेते हैं। इस प्रकार के बैङ्क योरोपीय देशों में सर्वत्र स्थापित किये गये हैं किन्तु राज्य उन पर नियन्त्रण रखता है, जिससे वे ऋण लेने वालों को तंग न करें। अर्ध सहकारी भूमि ब धक बैङ्क वे हैं, जो न तो पूर्ण रूप से सहकारी होते हैं, और न गैर सहकारी।

भारतवर्ष में बड़े जमींदारों के लिए गैर सहकारी तथा किसानों के लिए सहकारी भूमि ब धक बैङ्क उपयुक्त होंगे। किन्तु यहाँ जो भी भूमि बन्धक बैङ्क स्थापित किये गये हैं, वे अर्ध सहकारी हैं, कोई भी पूर्ण सहकारी नहीं कहा जा सकता। इस समय जो भी कार्य कर रहे हैं वे परिमित दायित्व वाली संस्थाएँ हैं, उनके सदस्य अधिकतर ऋण लेने-वाले ही होते हैं। किन्तु कुछ सदस्य ऐसे भी ले लिये जाते हैं जो ऋण लेनेवाले नहीं होते। इन सदस्यों को बैङ्क के प्रबन्ध में सहायता पहुँचाने तथा पूंजी को आकर्षित करने के उद्देश्य से लिया जाता है। यह लोग प्रान्त के प्रसिद्ध व्यापारी होते हैं। इन सदस्यों को क्रमशः

हटा देने की नीति है, जिससे बैंक पूर्ण रूप से सहकारी संस्था बन जावे। किन्तु यह बात सब को स्वीकार करनी पड़ती है कि जिस प्रकार रैफ़ायसन सहकारी समितियों में सदस्यों का समिति के कार्य से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, वैसा इन बैंकों में नहीं होता।

योजना—सन् १६२६ में रजिस्ट्रार सम्मेलन ने एक प्रस्ताव द्वारा भूमि बन्धक बैंकों की एक योजना तैयार की थी वह इस प्रकार है—

बैंक के उद्देश्य—(१) किसानों का भूमि तथा मकानों को छुड़ाना, (२) खेतों की भूमि तथा खेतीबारी के ढंग की उन्नति करना तथा किसानों के मकानों को बनवाना, (३) पुराने ऋण को चुकाना, (४) भूमि ख़रीदने के लिये रुपया देना।

भूमि-बन्धक बैंक का कार्यक्षेत्र छोटा होना चाहिए, किन्तु इतना छोटा भी न हो कि उसका ठीक प्रबन्ध न हो सके। यह नियम न बनाया जावे कि ऋण केवल ग्राम समितियों को ही दिया जायगा, हाँ, यदि ऋण लेनेवाला ग्राम समितियों का सदस्य हो तो उसके विषय में समिति का मत ले लिया जाय, किन्तु समिति पर उस ऋण का कोई उत्तरदायित्व न रहे।

सदस्य को उसकी सम्पत्ति के मूल्य के आधे से अधिक ऋण न दिया जाय। प्रत्येक सदस्य बैंक का हिस्सा ख़रीदे, जिससे बैंक के पास अपनी निजी पूँजी हो जावे, उसकी जमानत पर बैंक को बाहर से पूँजी मिल सके। ऋण लेनेवाले के हिस्से का मूल्य, जितना ऋण वह लेना चाहता है उसका बीसवाँ हिस्सा होना चाहिए। प्रत्येक बैंक अपनी आर्थिक स्थिति को देखते हुए एक रकम निश्चित कर ले जिससे अधिक ऋण किसी भी सदस्य को न दिया जाय। प्रान्त के सब भूमि-बन्धक बैंक अपना एक संगठन करें और एक केन्द्रीय संस्था स्थापित की जावे। केवल केन्द्रीय संस्था ही डिबेंचर बेचे, पृथक् पृथक्

बन्धक बैंक को यह अधिकार न दिया जावे तो प्रान्तीय सहकारी बैंक यह कार्य करे अथवा इसके लिए कोई पृथक् सेन्ट्रल भूमि बन्धक बैंक स्थापित किया जावे ?

(४) क्या भूमि बन्धक बैंक साधारण बैंकों तथा सरकारी सेन्ट्रल बैंकों की भांति डिपाजिट लें ? यदि लें तो उसके लिए क्या शर्तें होनी चाहिये ?

(५) जहां सहकारी साख समिति तथा भूमि-बन्धक बैंक एक ही स्थान पर हों, वहां उनका क्या सम्बन्ध होना चाहिए ?

(६) क्या सरकार इन बैंकों को आर्थिक सहायता दे ? यदि दे तो किस प्रकार दे—बैङ्कों को ऋण देकर, बैङ्कों को टैक्स तथा फीस से मुक्त करके, डिबेञ्चरों के मूल तथा सूद की गारंटी देकर, उनको ट्रस्टी सिक्यूरिटी बनाकर अथवा डिबेञ्चर खरीद कर ?

(७) क्या एक विशेष कानून बनाकर इन बैङ्कों को यह अधिकार देना चाहिये कि बिना अदालत में गये हुए बन्धक रखी हुई भूमि को बेच दें ?

सेन्ट्रल बैंकिङ्ग इनक्वायरी कमेटी की यह सम्मति तो हम पहले ही लिख चुके हैं कि बड़े बड़े ज़मींदारों के लिये मिश्रित पूँजीवाले व्यापारिक भूमि बन्धक बैंक स्थापित किये जॉय और किसानों के लिये सहकारी भूमि बन्धक बैङ्क। ऊपर लिखे अन्य प्रश्नों पर कमेटी की सम्मति नीचे लिखी जाती है—

कमेटी की राय में निम्नलिखित कार्यों के लिए ऋण देना चाहिए—(क) किसान की भूमि और मकान को छुड़ाने के लिए तथा पुराने ऋण को चुकाने के लिये, (ख) भूमि तथा खेतीबारी के ढङ्ग सुधारने के लिये तथा किसानों के मकान बनवाने के लिए। (ग) विशेष अवस्थाओं में भूमि खरीदने के लिये।

ऋण कितना दिया जावे, और कितने समय के लिये यह ऋण देनेवाले

की क्षमता तथा जिस कार्य के लिए ऋण लिया जा रहा है, उस पर निर्भर होगा। रुपया पाँच वर्ष से लेकर बीस वर्ष के लिये दिया जावे। आगे चलकर तीस वर्ष के लिये भी रुपया दिया जा सकता है। कमेटी की सम्मति में ५००० रु० से अधिक एक सदस्य को न दिया जावे, सदस्य को भूमि का आधे से अधिक ऋण किसी भी दशा में न दिया जावे।

कमेटी की राय में ऋण सूद सहित बराबर बराबर किस्तों में अदा किया जावे, जिससे कि एक निश्चित समय पर ऋण चुक जावे, इससे यह लाभ होगा कि किसान को लगभग उतनी ही किस्त देनी होगी, जितनी वह महाजन को केवल सूद में देता है। किन्तु बैंकों को यह अधिकार दे दिया जावे कि यदि वे चाहें तो दूसरे ढंग से किस्तें वसूल कर सकते हैं।

भूमि-बंधक बैंकों की कार्यशील पूँजी हिस्सा पूँजी तथा डिबेंचरों से प्राप्त की जानी चाहिये। हिस्सा पूँजी दो प्रकार से प्राप्त की जा सकती है—एक तो आरम्भ में हिस्सा बेच कर, दूसरे ऋण देते समय दी हुई रकम में से पाँच प्रतिशत काट कर हिस्से का मूल्य वसूल करने से। किन्तु आरम्भ में काम चलाने के लिये जहाँ कहीं भी आवश्यकता हो प्रांतीय सरकार बैंकों को बिना सूद के रुपया दे दे और डिबेंचर बिकने पर जो रुपया आए, उसमें से सरकार को रुपया दे दिया जावे। ध्यान रहे कि पूँजी की यह व्यवस्था बैंकों के प्रारम्भिक काल में ही उपयुक्त होगी। विशेषज्ञों का कथन है कि आगे चलकर इन बैंकों को बहुत पूँजी की आवश्यकता होगी, उस समय प्रांतीय सरकारों को इन बैंकों के हिस्से खरीद कर इनको सहायता पहुँचानी चाहिए।

अधिकतर कार्यशील पूँजी डिबेंचरों के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। सेंट्रल बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी के सामने गवाही देते हुए कुछ विदेशी विशेषज्ञों ने कहा था कि बैंकों की जितनी हिस्सा पूँजी हो उससे

एक दूध सहकारी समिति की स्थापना की। आरम्भ में गाव वाले तैयार नहीं हुए, किन्तु पीछे एक गाव के किसान, जिनका ग्वाले से झगड़ा हो चुका था और जो इस चिन्ता में थे कि वे अपना दूध कलकत्ते में किस प्रकार बेचें, तैयार हो गये। इस तरह पहली समिति की स्थापना हो गई।

समिति ने किसानों को ग्वाले से एक रुपया फी मन अधिक मूल्य दिया और उनके हिसाब की पासबुक हर किसान को दे दी। समिति भी दुहनवालों को नौकर रखती थी। आरम्भ में समिति को बहुत थोड़ा लाभ हुआ, किन्तु समिति ने दो बातों से सफलता प्राप्त की, एक तो किसानों को दूध की क़ीमत अधिक दी, दूसरे ग्राहकों को शुद्ध दूध दिया। क्रमश समितियों की सख्या बढने लगी। समितियों के सदस्यों को दूध का अधिक मूल्य मिलते देख, अन्य गावों में भी किसान समितियों के सदस्य बनने को लालायित होने लगे और कलकत्ते में समिति के दूध की माग बढने लगी। सन् १६१६ में समितियों ने एक दूध सहकारी यूनियन सगठित की, तबसे समितियों की सख्या बड़ी तेजी से बढती गई। सन् १६४४ में १२६ दूध समितियां यूनियन से सम्बधित थीं जिनके लगभग ६५०० सदस्य थे। केवल कलकत्ते में ही यूनियन लगभग १५० मन दूध प्रति दिन बेचती थी, जिसका मूल्य वर्ष में चार लाख रुपये से अधिक होता था।

दूध की उत्पत्ति का केन्द्र ग्राम्य दूध समितियां हैं। ये समितियां ही यूनियन की सदस्य हो सकती हैं। दूध-यूनियन इन समितियों को पूँजी देती है, उनका निरीक्षण तथा नियन्त्रण करती है, और कलकत्ते में दूध बेचती है।

समितियों के प्रतिनिधि यूनियन के डायरेक्टरों का चुनाव करते हैं। प्रत्येक समिति की एक वोट होती है। केवल सभापति और उपसभापति नहीं चुने जाते। डायरेक्टर ही यूनियन के कार्य की देखभाल

करते हैं।

यूनियन ने कुछ भण्डार स्थापित किये हैं, जिनमें कर्मचारी नियुक्त किये गये हैं। भंडार पर समितियों का दूध लिया जाता है। जिन समितियों के समीप कोई भंडार नहीं है, वे समीपवर्ती रेलवे स्टेशन पर दूध भेज देती हैं। भंडारों के मेनेजर रेलवे के द्वारा दूध कलकत्ते भेज देते हैं। कलकत्ते में यूनियन का एक कर्मचारी दूध ले लेता है तथा ग्राहकों के यहाँ भेज दिया जाता है।

भंडार में जब दूध आता है तो भंडार का मेनेजर यन्त्र से उसकी जाँच करता है तथा शुद्ध बर्तनों में भरे हुए दूध को कलकत्ते भेजता है। यूनियन एक पशु चिकित्सक रखती है जो समितियों के पशुओं की जाँच करता है और उनके रहने के स्थानों को देखता है कि वे गन्दे तो नहीं हैं। इन सब कर्मचारियों के ऊपर एक सरकारी कर्मचारी है, जो यूनियन का चेयरमेन है। सरकार ने इस कर्मचारी की सेवाएँ सहकारिता विभाग को दे दी हैं। दूध को वैज्ञानिक ढंग से सुरक्षित तथा शुद्ध रखने के लिये यूनियन ने एक फैक्टरी स्थापित की है। यूनियन मोटर, बैलगाड़ी, तथा ठेलों के द्वारा ग्राहकों के पास दूध पहुँचाती है, और अपने कर्मचारियों तथा एजेंटों के द्वारा दूध बेचती है।

आरम्भ में यूनियन के पास बहुत थोड़ी पूँजी थी, किन्तु अब यूनियन की कार्यशील पूँजी एक लाख और निजी पूँजी अस्सी हजार रुपये से कुछ अधिक है। यूनियन का वार्षिक लाभ लगभग २०,००० रु० है। यूनियन ने बहुत से प्रायमरी स्कूल खोले हैं, जिससे सहकारी समितियों के सदस्यों के लड़के शिक्षा पा सकें। यूनियन ने गावों में कुए भी खुदवाये हैं, तथा बढ़िया साँड़ खरीद कर रखे हैं, जिससे सदस्यों के पशुओं की जाति अच्छी बने। बङ्गाल में कलकत्ते के अतिरिक्त ढाका, दार्जिलिंग, तथा अन्य स्थानों में भी सहकारी समितियाँ स्थापित हो गई हैं, जिनकी संख्या दो सौ से कुछ अधिक है। प्रान्त में यह

आंदोलन अत्यन्त सफल हुआ है, और भविष्य में अधिकाधिक उन्नति की आशा है।

कलकत्ते की भांति मदरास में भी दूध सहकारी समितियाँ स्थापित की गई हैं।

संयुक्तप्रान्त में लखनऊ और इलाहाबाद की सहकारी दूध यूनियनें वर्ष में कुल मिलाकर २०,००० मन दूध लगभग २॥ लाख रुपये का बेच लेती हैं और अपने पास के गाँवों में, अपने सदस्यों को, प्रतिवर्ष २ लाख रुपये के लगभग दूध के मूल्य के रूप में, बाँटती हैं। लखनऊ यूनियन प्रति दिन ५० मन दूध और प्रयाग की यूनियन ३० मन दूध बेचती हैं। संयुक्तप्रान्त में लखनऊ और इलाहाबाद दूध यूनियनों को मिला कर ४५ दूध समितियाँ हैं। लखनऊ की समितियों के सदस्य अपनी गायों का दूध पञ्चों के सामने दुहते हैं, और उन बर्तनों को, जिनमें भरकर दूध लखनऊ भेजा जाता है, वहीं ताला लगा दिया जाता है। समितियों से दूध उन भण्डारों पर ले जाया जाता है, जहाँ वह इकट्ठा होता है वहाँ दूध की परीक्षा होती है। फिर उसे गरम किया जाता है। गरम दूध बड़े बड़े बर्तनों में भर कर उन पर मुहर लगा दी जाती है और मोटर-लारी द्वारा उन्हें लखनऊ भेज दिया जाता है। लखनऊ यूनियन में पहुँचने पर दूध जाँचा जाता है, फिर उसे ठंडा किया जाता है और शीतभंडार ('कोल्ड स्टोरेज') में रखा जाता है। पीछे उसे बर्तनों में बन्द करके ग्राहकों के पास भेज दिया जाता है। यह यूनियन आर्थिक दृष्टि से बहुत सफल हुआ है। संयुक्तप्रान्त में उन्नाव और बनारस में भी एक एक दूध समिति स्थापित हुई है।

आसाम में भी कुछ दूध समितियाँ स्थापित की गई हैं, किन्तु वहाँ कुछ को छोड़ कर शेष असफल रहीं।

पंजाब में कुछ ऐसी समितियाँ स्थापित की गई हैं, जो प्रति सप्ताह अपने सदस्यों की गायों का दूध नापती हैं, और उसका लेखा रखती

है। समिति का निरीक्षण सदस्यों को बतलाता है कि किस गाय का रखना व्यापारिक दृष्टि से लाभदायक है और किस गाय का हानिकारक। जब तक भारतवर्ष में दूध का धंधा उन्नत नहीं हो जाता, यह आशा करना कि इस प्रकार की समितियाँ अधिक स्थापित होंगी, स्वप्न मात्र है।

घी समितियाँ—संयुक्तप्रान्त में घी का धंधा बहुत महत्वपूर्ण है। यह धंधा व्यापारियों के हाथ में है, जो प्रायः किसान को घी का कम मूल्य देकर उसमें चर्बी, या तेल, वनस्पति घी मिला कर ऊँचे दामों पर ग्राहकों को बेचते हैं। अतएव ग्राहकों को शुद्ध घी देने और किसानों को अच्छा मूल्य दिलाने के लिए सहकारी घी समितियाँ स्थापित की गयी हैं। इस समय प्रान्त में आगरा, एटा, बांदा, जालौन, मैनपुरी, इटावा, मेरठ, बुलन्दशहर इत्यादि जिलों में आठ सौ सत्तर घी समितियाँ हैं, जो १२ घी विक्रय यूनियनों से सम्बंधित हैं। इन समितियों के दस हज़ार से ऊपर सदस्य हैं और लाखों रुपयों का घी बेचा जाता है।

एक गाँव में एक घी समिति स्थापित की जाती है, जिस किसान के पास गाय या भैंस होती है, वह उसका सदस्य बन सकता है। जब गाय भैंस व्याती है, तभी समिति उससे एक निश्चित राशि में घी के लिये वादा करा लेती है। समिति उस घी का रुपया किसान को पेशगी दे देती है। प्रति पखवारा घी पञ्चायत के सामने, गरम किया जाता है और तौला जाता है। केवल शुद्ध घी ही लिया जाता है और उस सदस्य के हिसाब में जमा कर दिया जाता है। प्रत्येक ज़िले में एक घी यूनियन है, जो घी को इकट्ठा करके बाहर भेजती है।

## बारहवाँ परिच्छेद

# चकबन्दी समितियाँ

**खेतों का छोटे और बिखरे हुए होना**—भारतवर्ष कृषि प्रधान देश है, लगभग ७० प्रतिशत जनता खेतीबारी में लगी हुई है। गृह उद्योग धंधों के नष्ट हो जाने के कारण उनमें लगी हुई जनता भी खेतीबारी में घुस गई, साथ ही बढ़ती हुई जनसंख्या के भरण-पोषण के लिये भी खेती के अतिरिक्त और कोई साधन नहीं रहा। इन सब कारणों से खेती में लगी हुई जनसंख्या बराबर बढ़ती गई। फल यह हुआ कि प्रति किसान भूमि कम होती गई। बम्बई, पञ्जाब तथा अन्य प्रान्तों में तो कहीं कहीं खेत केवल तीन या चार वर्ग गज के रह गये हैं। देश में खेतीबारी के योग्य जितनी भूमि थी, वह सब जोत ली गई यहाँ तक कि चरागाह भी खेतों में परिवर्तित कर दिये गये, फिर भी भूमि की कमी रही।

किसानों के पास भूमि थोड़ी तो है ही, साथ ही वह छोटे छोटे टुकड़ों में विभाजित है, और ये टुकड़े एक-दूसरे के पास न होकर बिखरे हुए हैं। खेतों के बिखरे हुए होने से किसान का समय, परिश्रम तथा पूँजी का इतना अधिक अपव्यय होता है कि वैज्ञानिक ढंग से खेती की उन्नति नहीं हो सकेगी।

खेतों के बिखरने का कारण यह है कि भारतवर्ष में हिन्दू तथा मुसलमानों में यह रीति है कि बाप के मरने पर भूमि बराबर बराबर सब लड़कों में बाँट दी जावे। फल यह होता है कि प्रत्येक लड़का बाप के हर एक खेत में से बराबर हिस्सा लेना चाहता है। मिसाल के तौर पर यदि किसी के पास चार भूमि के टुकड़े हैं और उसके चार बेटे हैं

तो चारों बेटे प्रत्येक टुकड़े में से एक-चौथाई हिस्सा लेंगे। बात यह है कि प्रत्येक टुकड़े की उत्पादन शक्ति भिन्न भिन्न होती है, इसलिए अच्छी तथा बुरी सारी ही भूमि के बराबर टुकड़े करके बाँट दिये जायँगे। फल यह होगा कि वे चार टुकड़े सोलह टुकड़ों में विभाजित हो जावेंगे। क्रमशः खेत बँटते बँटते एक दूसरे से दूर पड़ जाते हैं और क्षेत्रफल में बहुत छोटे हो जाते हैं।

बिखरे हुये खेतों का खेतीबारी पर बहुत बुरा प्रभाव होता है। कुछ खेत तो इतने छोटे हो जाते हैं कि उन पर खेती बारी हो ही नहीं सकती, वह भूमि बेकार पड़ी रहती है। फिर, बहुत सी भूमि खेतों की मेड़ों में नष्ट हो जाती है। किसान को एक खेत से दूसरे खेत पर जाने में बहुत समय खर्च करना पड़ता है। वह न तो उन बिखरे हुए खेतों की ठीक तरह से देखभाल ही कर सकता है और न वैज्ञानिक ढंग से खेती ही कर सकता है। यदि किसान के सब खेत एक ही स्थान पर हों तो वह एक कुआँ खोद कर सिंचाई कर सकता है, किन्तु प्रत्येक बिखरे हुए खेतों की रखवारी भी नहीं कर सकता। छोटे छोटे खेतों की मेड़ों के कारण किसानों में आपस में झगड़ा होता है, इस प्रकार खेतों के बिखरे हुए होने का दशा खेतीबारी की उन्नति नहीं हो सकती। जब तक हिन्दू तथा मुस्लिम कानूनों में परिवर्तन न किया जावे, तब तक यह समस्या हल नहीं हो सकती। बम्बई प्रान्त में दो बार इस बात का प्रयत्न किया गया, किन्तु दोनों बार वह असफल रहा। हाँ, बड़ौदा राज्य में एक ऐसा कानून अवश्य बना दिया गया है, जिससे कोई खेत एक निश्चित सीमा के बाद बाँटा नहीं जा सकता।

पंजाब में चकबन्दी—भारतवर्ष में सब प्रथम पंजाब में सहकारिता के द्वारा खेतों की चकबन्दी का काम प्रारम्भ किया गया, और वहाँ आशाजनक सफलता प्राप्त हुई। १६२० में वहाँ भूमि की चकबन्दी करने

वाली समितियाँ इस उद्देश से स्थापित की गई कि छोटे बिखरे हुए खेतों को इस प्रकार बाटा जाय कि किसानों को अपनी सारी भूमि के बराबर एक ही स्थान पर, अथवा दो या तीन बड़े टुकड़ों में, भूमि मिल जावे। पंजाब प्रान्तीय सहकारिता विभाग ने इस कार्य के लिये रेवेन्यू विभाग के कर्मचारियों को नियुक्त किया। वहाँ सब-इंस्पेक्टर गाँवों में जाकर किसानों को बिखरे हुए खेतों से होने वाली हानियाँ, चकबन्दी के लाभ और चकबन्दी करने के उपाय समझाता है। जब किसान चकबन्दी समिति के सदस्य बनने को तैयार हो जाते हैं तो समिति की स्थापना की जाती है, और एक पञ्चायत चुन ली जाती है। समिति का सदस्य या तो ज़मींदार हो सकता है, अथवा मौरूसी किसान।

समिति को सदस्यों की निम्नलिखित बातें स्वीकार करनी पड़ती हैं (१) चकबन्दी के लिए बिखरे हुए खेतों का नया बटवारा आवश्यक है। (२) यदि किसी योजना को दो तिहाई सदस्य स्वीकार कर लेंगे तो वह योजना प्रत्येक सदस्य को स्वीकार करनी होगी। (३) स्वीकृत योजना के अनुसार वह अपने खेतों को सदा के लिए छोड़ देगा। (४) यदि किसी प्रकार का झगड़ा उपस्थित हो जाय तो पंच नियुक्त किये जावेंगे और जो फैसला वे देंगे, वह सबको मान्य होगा। यद्यपि समिति के नियमों के अनुसार दो तिहाई सदस्यों से स्वीकृत योजना हर एक सदस्य को मान्य होगी, किन्तु यह नियम अभी काम में नहीं लाया जाता, और जब तक सब सदस्य अपने टुकड़ों को दे कर नये खेत लेना स्वीकार नहीं कर लेते तब तक योजना सफल नहीं होती।

सब इंस्पेक्टर, गाँव में कितने प्रकार की जमीन है, यह निश्चित करता है, और नवीन बँटवारे में इसका ध्यान रखा जाता है। वह थोड़ी सी भूमि सार्वजनिक उपयोग के लिये सुरक्षित रखता है, जैसे सड़क इत्यादि। कूओं तथा सिंचाई के अन्य साधनों में किसानों का हिस्सा निर्धारित

किया जाता है। जब यह सब निश्चय हो जाता है तो पंचायत कर्मचारी की सहायता से एक नक्शा तैयार करती है, जिसमें नवीन बँटवारा दिखाया जाता है। यह नक्शा साधारण सभा के सामने रक्खा जाता है। यदि सब सदस्य उसको स्वीकार कर लेते हैं तो वह लागू होता है, नहीं तो फिर से नया बँटवारा होता है और नया नक्शा तैयार किया जाता है। इस प्रकार कभी कभी नक्शा तीन-चार बार तैयार करने पड़ते हैं और महीनों का परिश्रम केवल एक किसान के हठ से नष्ट हो जाता है। जब नये बँटवारे को सब लोग स्वीकार कर लेते हैं, तब उन्हें नये खेत दे दिये जाते हैं और उन खेतों की रजिस्ट्री करा दी जाती है।

इस योजना में किसी की हानि नहीं होती, किसी को भी पहिले से कम भूमि नहीं मिलती। कोई जबरदस्ती नहीं की जाती, और छोटे तथा बड़े सभी किसान इससे लाभ उठा सकते हैं। चकबन्दी समितियाँ इन बिखरे हुए खेतों की केवल चकबन्दी करती हैं, भूमि का लड़कों में बटना नहीं रोक सकतीं।

पंजाब में चकबन्दी का कार्य प्रारम्भ होने पर पहले आठ वर्षों में केवल १,६२,००० एकड़ भूमि की चकबन्दी हुई, किन्तु सन् १९२९ में ४८,०७६ एकड़ की, १९३० में ५०,००० एकड़ से अधिक की, और १९३१ में ७२,८२१ एकड़ भूमि की चकबन्दी हुई। १९३५ तक चकबन्दी की गति कुछ धीमी रही क्योंकि वह समय आर्थिक मंदी का था। १९३५ के उपरान्त चकबन्दी बहुत तेजी से बढ़ा। अब प्रतिवर्ष डेढ़ लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी हो रही है। अब तक बारह लाख एकड़ से अधिक भूमि की चकबन्दी हो चुकी है और प्रति एकड़ पीछे दो रुपये से कम खर्च होता है। चकबन्दी के फल स्वरूप उन गाँवों में ३००० नये कुएँ और १० हजार नालियाँ खोदी गईं, १००० से अधिक कूओं की मरम्मत की गई और वे सिंचाई के योग्य बनाये गये।

पजाब में चकबन्दी कानून सन् १९३६ में पास किया गया। वहाँ रेवन्यू विभाग को चकबदी के काम में अच्छी सफलता मिली है। जिन गाँवों में चकबन्दी हो चुकी है, वहाँ कूएँ अधिक सख्या में खोदे गये हैं, तथा जो भूमि पहिले जोती नहीं जाती थी, उस पर खेतीबारी होन लगी है। साथ ही उन गाँवों में खतीबारी को विशेष उन्नति हुई है। खतों के बिखरे होने से जो हानियाँ थीं, क्रमश दूर हो रही हैं। गाँवों में एक प्रकार से नया जीवन आ गया है। यही नहीं, कहीं-कहीं किसानों ने अपने खत पर ही मकान बना कर रहना प्रारम्भ कर दिया है।

किन्तु इस प्रकार चकबन्दी करने में बहुत सी कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। जिस योजना में प्रत्येक किसान को राज़ी करना आवश्यक हो, उसका सफल होना सदेहजनक ही होता है। प्रत्येक भूमि का स्वामी अपनी पैतृक भूमि को अच्छा समझता है, पुराने विचारों के बुड्ढे किसान कोई परिवर्तन नहीं चाहते छोटे किसानों को चकबन्दी में अधिक लाभ नहीं दिखाई देता, क्योंकि उनके पास एक या दो ही खेत हैं, तथा मौरूसी काश्तकार समझता है कि यदि उसने अपनी भूमि को बदल लिया तो उसके अधिकार जाते रहेंगे। यह कठिनाइयाँ तो हैं ही, गाँव का पटवारी भी चकबन्दी नहीं चाहता। वह समझता है कि चकबन्दी हो जाने से उसकी आमदनी कम हो जावेगी। अस्तु, इस कार्य के करनेवालों को अत्यन्त धैर्य तथा सहानुभूति से काम करना चाहिए।

जब किसी किसान के हठ से योजना असफल होती दिखाई दे तो उस किसान को भूमि को छोड़ देने से काम चल सकता है। परन्तु ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, जिनमें बहुत समय तथा रुपया खच करके योजना तैयार करने पर भी कतिपय किसानों के राज़ी न होने स सब किया धरा व्यय होगया। सन् १९२८ में यह नियम बनाया

गया कि यदि ६० प्रतिशत सदस्य किसी योजना को स्वीकार करें तो उस योजना को लागू किया जावे।

कुछ विद्वानों का कथन है कि बिना क़ानून बनाये चकबन्दी का कार्य सफलता-पूर्वक नहीं किया जा सकता। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि सहकारिता आन्दोलन इस कार्य के लिए उपयुक्त नहीं है, इसलिये क़ानून के द्वारा चकबन्दी होना चाहिए। किन्तु यह सब मानते हैं कि सहकारिता के इतने अधिक लाभ हैं कि जब तक इसके द्वारा सफलता मिल रही है तब तक इसको न छोड़ना चाहिए। जहाँ जहाँ चकबन्दी का कार्य सफलता-पूर्वक हो चुका है, वहाँ जनता इसके लाभों को समझ गई है, और लोगों की राय क़ानून बनाने के पक्ष में है। परन्तु अभी वह समय नहीं आया, जब क़ानून के द्वारा चकबन्दी का कार्य किया जावे, क्योंकि यदि कोई ऐसा क़ानून बनाया गया तो यह कार्य रेवन्यू विभाग के कर्मचारी करेंगे, फल यह होगा कि जनता का विश्वास हट जावेगा और बड़ी कठिनाइयाँ उपस्थित होंगी।

१६२८ में रजिस्ट्रार सम्मेलन ने इस आशय का प्रस्ताव पास किया था कि जहाँ तक स्थानीय परिस्थिति सहकारी समितियों के द्वारा चकबन्दी के लिये अनुकूल हो वहाँ तक समितियाँ यह कार्य करें।

मध्यप्रान्त में—मध्यप्रान्त की छत्तीसगढ़ कमिश्नरी में खेत बहुत छोटे तथा बिखरे हुए हैं। प्रान्तीय सरकार ने कई बार इस समस्या को हल करने का विचार किया। रेवन्यू तथा बन्दोबस्त विभाग के कर्मचारियों ने चकबन्दी करने का प्रयत्न भी किया किन्तु सफलता न मिली। ज़मींदारों तथा मालगुज़ारों ने भी चकबन्दी का प्रयत्न किया, किन्तु किसानों ने इस कार्य में सहयोग नहीं किया, क्योंकि मालगुज़ार यह प्रयत्न करते थे कि अच्छी भूमि उन्हें मिल जावे। इस कमिश्नरी में एक तो भूमि बहुत प्रकार की है दूसरे क़ानूनी अड़चनें भी हैं। इस

कारण प्रांतीय सरकार ने सन् १६१८ में चकबन्दी क़ानून बनाया, जो अभी केवल छत्तीसगढ़ कमिश्नरी में ही लागू है।

इस क़ानून के अनुसार दो या अधिक गाँवों को भूमि के स्वामी, अथवा स्थाई रूप से जोतनेवाले, चकबन्दी के लिए प्रार्थनापत्र दे सकते हैं। किन्तु शर्त यह है कि उनके पास गाँव की भूमि का एक निश्चित भाग होना चाहिए। गाँव के कम से कम आधे भूमि जोतनेवाले जिनके पास गाँव की दो तिहाई भूमि हो, यदि चकबन्दी की योजना को मानलें और अधिकारियों से उसकी स्वीकृति मिल जावे तो वह योजना अन्य लोगों पर लागू हो जावेगी। इस कार्य को करने के लिये एक अफ़सर रहता है। उसे उच्च अधिकारियों से योजना की स्वीकृति लेनी पड़ती है। यदि उस योजना में किसी को कुछ भी आपत्ति हो तो डिप्टीकमिश्नर अथवा सेटलमेंट अफ़सर स्वीकृति दे सकता है, नहीं तो सेटलमेंट कमिश्नर स्वीकृति देता है। उसकी कोई अपील नहीं हो सकती, केवल प्रान्तीय सरकार इस बँटवारे को पलट सकती है।

मध्यप्रान्त में चकबन्दी क़ानून के द्वारा बहुत कुछ काम हुआ है। सन् १६३६ तक १८८५ गाँव में चकबन्दी हुई और ३३ करोड़ ४० लाख भूमि के टुकड़ों को घटाकर उन्हें केवल पाँच लाख सत्तर हज़ार कर दिया गया। प्रति वर्ष अधिकाधिक भूमि की चकबन्दी हो रही है। चकबन्दी रेवन्यू विभाग करता है।

संयुक्तप्रान्त में—संयुक्तप्रान्त में २६१ सहकारी भूमि चकबन्दी समितियाँ स्थापित हो चुकी हैं। ये समितियाँ पंजाब की समितियों को ही आदर्श मानकर कार्य कर रही हैं। किन्तु यहाँ कठिनाइयाँ अधिक हैं। एक तो यहाँ गाँवों में भूमि बहुत प्रकार की होती है दूसरे ज़मींदार तथा किसान भी बहुत प्रकार के हैं, उनके अधिकारों में बहुत भिन्नता है। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि यह आंदोलन कहाँ तक सफल होगा। फिर भी लगभग एक लाख बीघा भूमि की चकबन्दी हो

चुकी है, और १ लाख खेत, ६ हजार खेतों में परिणत कर दिये गये हैं। १९३६ में चकबन्दी-कानून पास हो गया, तब से रेवन्यू विभाग भी यह काम कर रहा है।

कुछ समय से मदरास प्रान्त में भी चकबन्दी समितियाँ स्थापित हो रही हैं। वहाँ प्रयोग अभी नया ही होने से उसके बारे में विशेष नहीं कहा जा सकता।

देशी राज्यों में बड़ौदा तथा कश्मीर में चकबन्दी समितियाँ सफलता पूर्वक काम कर रही हैं, इन दोनों राज्यों में चकबन्दी का काम क्रमशः बढ़ता जा रहा है।

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत तथा देशी राज्य में बिखरे हुए छोटे-छोटे खेतों की समस्या ने विकट रूप धारण कर रखा है। जगह-जगह इस पर विचार हो रहा है, किन्तु क्या उपाय काम में लाया जाय, इसका निश्चय नहीं हो पाया है। पंजाब ने इस आंदोलन में पथ प्रदर्शक का कार्य किया है।



## तेरहवाँ परिच्छेद

# सफाई तथा स्वास्थ्य समितियाँ

गाँवों की सफाई और स्वास्थ्य का प्रश्न—भारतवर्ष के गाँवों में गन्दगी का तो मानो साम्राज्य है। जिधर देखिये, उधर ही कूड़ा तथा गंदगी के ढेर दिखलाई देंगे। गाँव की गलियाँ कभी साफ नहीं की जातीं, घरों के समीप ही अथवा कुछ ही दूरी पर, खाद के ढेर लगा दिये जाते हैं, जिनसे गन्दगी तो बढ़ती ही है, साथ ही मक्खियाँ इतनी अधिक उत्पन्न हो जाती हैं कि वे सारे गाँव में फैल जाती हैं। ये मक्खियाँ गन्दे पदार्थ पर बैठ कर अपने परों तथा पैरों से गन्दगी को भोजन, वस्त्र, जल तथा बच्चों के चेहरे, तथा पशुओं के मुँह, नाक तथा